6. अगर घोड़ा बिना फेरे बिगड़ता है तो सिपाही कब बिगड़ता है?
(क) सोने से (ख) शराब पीने से
(ग) बिना लड़े (घ) बिना दौड़े (ग)

7. दाढ़ियों वाले सिख कैसा गीत गाएँगे कि सब चकित होंगे?
(क) लुच्चा (ख) मधुर
(ग) बेसुरा (घ) समूह (क)

8. लहनासिंह ने नील गाय के सींग कितने लम्बे होने का अनुमान किया था?
(क) चार फुट के (ख) पाँच फुट के
(ग) एक गज के (घ) दो-दो फुट के (घ)

9. लहनासिंह के अनुसार कयामत किस रूप में आयी है?
(क) प्रलय के रूप में (ख) आलो के रूप में
(ग) मोर पंख लगाकर (घ) लपटन की वर्दी पहन कर (घ)

10. स्वप्न में लहनासिंह से कौन बात कर रहा है?
(क) वजीरा सिंह (ख) सूबेदारनी
(ग) कीरत सिंह (घ) जर्मन लपटन (ख)

प्रश्न

1. 'उसने कहा था' कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
2. 'उसने कहा था' का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
3. लहनासिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. सिद्ध कीजिए कि 'उसने कहा था' कहानी में देशप्रेम की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है।
5. 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिए।

पूस की रात

□ *प्रेमचन्द*

(1)

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा—सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली—तीन ही तो रुपये हैं; दे दोगे तो कम्बल कहाँ से आवेगा? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी। उससे कह दो, फसल पर रुपये दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्बल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं सो सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों मरेंगे, बला तो सिर से टल जायेगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला—ला दे दे, गला तो छूटे। कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आँखें तरेरती हुई बोली—कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई ख़ैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी—न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला—तो क्या गाली खाऊँ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा—गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गयीं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये। फिर बोली—तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी।

किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झों दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रुपये लिये और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-काटकर तीन रुपये कम्बल के लिए ज किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीन के भार से दबा जा रहा था।

(2)

पूस की अँधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अप खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरा गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा—क्यों जबरा, जाड़ा लगता है कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आये थे। अब खाओ ठण्ड मैं क्या करूँ। जानते थे, मैं यहाँ हलुवापूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान बुद्धि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठण्डी पीठ सहलाते हुए कहा—कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठण्डे हो जागे। यह राँड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिये आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक-एक भागवान् ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गर्मी से घबड़ाकर भागे! मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ, कम्बल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी है! मजूरी हम करें मजा दूसरे लूटें!

हल्कू उठा और गड्ढे में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा—पियेगा चिलम? जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ, जरा मन बहल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू—आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिये और उसके मुँह के पास अपना ुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी ो जाऊँगा; पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन होने लगा। कभी इस करवट लेटता, ्भी उस करवट; पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाए हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया, तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसके सिर ो थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही ी; पर वह उसे अपनी गोद से चिमटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर हीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यहाँ है; और हल्कू की वित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र ा भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा ़ सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक यी स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठण्डे झोंकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकार कर बुलाया; र वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरन्त ही फिर दौड़ता। कर्त्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

(3)

एक घण्टा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठण्ड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा—अभी कितनी रात बाकी है! सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायँगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देखे तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो; मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिये और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा, तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा—अब तो नहीं रहा जाता जबरू! चलो, बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर
टाँटे हो जायेंगे, तो फिर आकर सोयेंगे। अभी तो रात बहुत है।

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अन्धकार में निर्दय पवन पत्तियों
कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहँदी के फूलों की खुशबू लिये हुए आया।

हल्कू ने कहा—कैसी अच्छी महक आई जबरू! तुम्हारी नाक में भी कुछ सुगन्ध
रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गयी थी। उसे चिचोड़ रहा

हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों
एक ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का
खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठण्ड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को
कर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे
उस अथाह अन्धकार को अपने सिरों पर सम्भाले हुए हों। अन्धकार के उस अनन्त
में वह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उता
बगल में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिये, मानो ठण्ड को ललकार रहा हो, 'तेरे
में आये सो कर।' ठण्ड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजयगर्व को हृदय
छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा—क्यों जब्बर, अब ठण्ड नहीं लग रही है?

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा—अब क्या ठण्ड लगती ही रहेगी।

'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठण्ड क्यों खाते।'

जब्बर ने पूँछ हिलाई।

'अच्छा आओ इस अलाव को कूद कर पार करें। देखें कौन निकल जाता है। अ
जल गये बच्चा, तो मैं दवा न करूँगा।'

जब्बर ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

'मुन्नी से कल न कह देना, नहीं लड़ाई करेगी।'

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ़ निकल गया। पै
में जरा लपट लगी; पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास अ
खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा—चलो-चलो, इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

LIBRARY BOOKS

(4)

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अँधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी; पर एक क्षण में फिर आँखें बन्द कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा था। उसके बदन में गर्मी आ गयी थी; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुण्ड उसके खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुण्ड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाज़ें साफ़ कान में आ रही थीं। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चरचर सुनायी देने लगी।

उसने दिल में कहा—नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज़ लगायी—जबरा, जबरा!

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़ेपाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज़ लगायी—हिलो! हिलो! हिलो!!

जबरा फिर भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फ़सल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी; पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला; पर एकाएक हवा का ऐसा ठण्डा, चुभनेवाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठण्डी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफ़ाया किये डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शान्त बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गयी थी और मुन्नी कह
थी—क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गये और उधर सारा खेत चौपट
गया।

हल्कू ने उठकर कहा—क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली—हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता
तुम्हारे यहाँ मँड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया—मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐ
दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।

दोनों फिर खेत के डाँड़ पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जब
मँड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी; पर हल्कू प्रसन्
था।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा—अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न होकर कहा—रात की ठण्ड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

□

4. सिद्ध कीजिए कि 'उसने कहा था' कहानी में देशप्रेम की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है।
5. 'उसने कहा था' कहानी की समीक्षा कीजिए।

पूस की रात

शब्दार्थ—**खैरात** = दान; **पुआल** = चावल का फूस; **पिशाच** = राक्षस; **आहत** = दुःखी (चोटिल); **दोहर** = चद्दर; **मड़ैया** = झोंपड़ी।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. पूस की रात कैसी होती है?
   (क) अंधेरी (ख) लम्बी
   (ग) ठण्डी (घ) सुहानी
2. हलकू की पत्नी ने तीन रुपये बचाकर रखे थे—
   (क) अनाज खरीदने के लिए (ख) ब्याज चुकाने के लिए
   (ग) बीच खरीदने के लिए (घ) कम्बल खरीदने के लिए

3. हलकू की पत्नी मुन्नी को किस बात के लिए जनम हुआ लगता है?
(क) बाकी चुकाने के लिए
(ख) आराम करने के लिए
(ग) मजदूरी करने के लिए
(घ) दूसरों के अत्याचार सहने के लिए (क)

4. जबरा कुत्ते ने क्या भाँप लिया कि वह चुप हो गया?
(क) हलकू को ठंड लग रही है
(ख) हलकू उससे लिपटकर सोना चाहता है
(ग) दुम हिलाने से हलकू को बुरा लगता है
(घ) कूँ-कूँ करने से हलकू को नींद नहीं आती (घ)

5. हलकू को लगता है चिलम पीने से जाड़ा तो क्या जाता है पर—
(क) खाँसना हो जाता है (ख) मन बहल जाता है
(ग) गर्मी आ जाती है (घ) नशा हो जाता है (ख)

6. जाड़ा किसकी तरह उसकी छाती दबाए हुए था?
(क) चिमटी की तरह (ख) लोहे के प्लास की तरह
(ग) पिशाच की तरह (घ) जबरा की तरह (ग)

7. हलकू ने अनुमान लगाया कि ऊपर आ जाएँगे तो कहीं सवेरा होगा—कौन ऊपर आ जाएँगे—
(क) सप्तर्षि (ख) चाँद तारे
(ग) हवा का वेग (घ) अंधकार (क)

8. हलकू ने तापने के लिए क्या जलाया?
(क) अरहर की लकड़ियाँ (ख) उपले
(ग) आम की सूखी पत्तियाँ (घ) कूड़ा करकट (ग)

9. आहट सुनने पर हलकू को अपनी जगह से हिलना क्या लग रहा था?
(क) मुश्किल (ख) मरने जैसा
(ग) असम्भव (घ) जहर (घ)

10. खेत की दुर्दशा देखकर मुन्नी के मुख पर छा गयी—
(क) लाली (ख) उदासी
(ग) चिन्ता (घ) सुखी (ख)

प्रश्न

1. 'पूस की रात' कहानी का मूल भाव स्पष्ट कीजिए।
2. 'पूस की रात' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. हलकू के जीवन की समस्या क्या है?
4. सिद्ध कीजिए कि 'पूस की रात' एक यथार्थवादी कहानी है।
5. 'पूस की रात' कहानी के आधार पर प्रेमचन्द की कहानी-कला पर निबन्ध लिखिए।

आकाशदीप

❑ *जयशंकर 'प्रसाद'*

"बंदी!"

"क्या है? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बंदी हो?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा?"

"मिल जायेगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे?"

"हाँ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा—"यह क्या! तुम स्त्री हो?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है?"—अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है—तुम्हारा नाम?"

"चम्पा।"

तारक-खचित नील अम्बर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी

से उसका कृपाण निकाल-कर, फिर लुढ़कते हुए, बंदी के समीप पहुँच गई। सहसा से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी!"

आपत्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी ढुलककर उस के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र ग लगा। भीषण आँधी पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-क्रीड़ा अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिल हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(2)

अनन्त जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और ल की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता न बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुधगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?"

कृपाण दिखाकर बुधगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौ का स्वामी मैं हूँ।"

"तुम? जलदस्तु बुधगुप्त? कदापि नहीं।" चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपा टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछ पड़ा।

"तो तुम द्वन्दयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वह स्वामी होगा।"—इतना कहकर बुधगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया।

चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुधगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिए। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुधगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुधगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं।

बुधगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं?"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा।" बुधगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुधगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुधगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर, सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डांड लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया। बुधगुप्त के पूछने पर उसने कहा—"यहाँ एक जलमग्न शैल-खण्ड है। सावधान न रहने से नाव टकराने का भय है।"

(3)

"तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्सहाय हूँ—अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित होकर प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बन्दी बना ली गई।"—चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रंजत संध्या थिरकने लगी। चम्पा के असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक तरुण बालिका! वह

विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तु का पता चला। वह
कोमलता।

उसी समय नायक ने कहा—''हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।''

बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। मांझी भी उतरे। बुध
कहा—''जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चम्पा द्वीप कहेंगे।''

चम्पा हँस पड़ी।

(4)

पाँच बरस बाद.....

शरद के धवन नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चन्द्र की उज्ज्वल वि
अन्तरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चम्पा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुण चम्पा दीपक जला रही थी। बड़े
से अभ्रक की मंजूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची
दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही
डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्ष
हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असंभव था। उसने आशा-भरी आँखें फिरा लीं।

सामने जल-राशि का रजत शृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे
नीलम की क्रीड़ा शैल-मालायें बन रही थीं—और वे मायाविनी छलनायें, अपनी हँसी
कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों का वंशी-झनकार उनके संगीत
मुखरित होता था। चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल-राशि में उसके कंदील का प्रति
अस्त-व्यस्त था! वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी हो
उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकार—''जया!''

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभो-मण्डल
मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चम्पा को र
कहती; बुधगुप्त की आज्ञा थी।

''महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।'' चम्पा ने कहा। जया चली ग

दूरागत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी
रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ
हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिरकर कहा—''बुधगुप्त!''

''बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम कर
है?''

''क्षीरनिधिशायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश-दीप जलवाऊँ?''

''हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको,
जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?''

"हाँ, वह कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो, बुधगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?"

" तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पारानी।"

"मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे—इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी। बुधगुप्त! उस विजन अनन्त में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुँह क्यों देखते थे? वह नक्षत्रों की मधुर छाया—"

"तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-द्वीप पर व्यंग्य कर रहे हो।" नाविक! उस प्रचण्ड आँधी में आकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—"भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।" और जब मेरे पिता बरसों बाद लौटते तो कहते—"साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने संकटों में मेरी रक्षा की है।" वह गद्गद् हो जाती। मेरी माँ? आह नाविक! यह उसी की पुण्यस्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जल-दस्यु। हट जाओ।—सहसा चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठाकर हँस पड़ा।

"यह क्या, चम्पा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।"—कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

(5)

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला से टकराकर लहरें बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शान्त गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

"इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं! तो जै वेला में चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण गोलक सदृश अनन्त जल में डूबकर बुझ जाऊँ?"—चम्पा के देखते-देखते पीड़ा अ ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे सिंधु में चौथाई—आधा, फिर सम्पूर्ण विलीन हो गय एक दीर्घ निश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फेर लिया। देखा, तो महानाविक का बजरा उस पास है। बुधगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पा पास बैठ गये।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चम्पा तो?"

"अच्छा होता, बुधगुप्त! जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।"

"आह चम्पा, तुम कितनी निर्दय हो! बुधगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या न कर सकता? जो तुम्हारे लिए नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता नये राज्य खोज सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखा तो...। कहो, चम्पा! वह कृपाण अपना हृदय-पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।"—महानाविक- जिसके नाम से बाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था—घुट के बल चम्पा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाता की चोटी पर हरियाली में विस्तृत जल-देश में, नील पिंगल संध्य प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उ मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी। उस सौरीा से पागल चम्पा ने बुधगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का किन्तु उस परिरंभ में सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

"बुधगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया।"—चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

"तो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया?"—आश्चर्य-कम्पित कण्ठ से महानाविक ने पूछा।

"विश्वास? कदापि नहीं, बुधगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अंधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।"—चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तुम से अपनी आँखें बंद करने लगी थी। दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविक ने कहा—"इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति से एक प्रकाश-

ाऊँगा, चम्पा। यहीं उस पहाड़ी पर। सम्भव है कि मेरे जीवन की धुंधली संध्या उससे लोकपूर्ण हो जाय।''

(6)

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाता थी। वह बहुत दूर तक सिन्धु-जल में मग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी लमाता पर चम्पा के आदि-निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चम्पा को वनदेवी- सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूपिता म्पा शिविका-रूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ प-स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुधगुप्त स्तम्भ के द्वार पर खड़ा ा। शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था क बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजी वन-बालाएँ फूल छालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तम्भ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—''यह क्या जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाईं?''

''आज रानी का ब्याह है न?''—कहकर जया ने हँस दिया।

बुधगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोरकर चम्पा ने पूछा—क्या यह सच है?''

''यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चम्पा! कितने वर्षों से मैं वालामुखी को अपनी छाती में दबाये हूँ।''

''चुप रहो, महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब तिशोध लेना चाहा।''

''मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चम्पा! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।''

''यदि मैं इसका विश्वास कर सकती। बुधगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।''

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुधगुप्त और चम्पा एकान्त में एक-दूसरे के सामने बैठे थे।

बुधगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिए। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—''चम्पा, हम लोग जन्मभूति—भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शची के समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरा होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्पित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्तमणि की तरह द्रवित हुआ।

चम्पा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं स सकता, मैं उस लोग में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बही हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उ हो गइ हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़ तम में मुस्कराने लगी। पशु-ब और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और एकान्त कामना की हँसी खिलखि लगी; पर मैं न हँस सका।

चलोगी चम्पा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी-सी जन्मभूमि अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानावि बुधगुप्त की आज्ञा सिन्धु लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के सम भारत में पहुँचा देंगी। आह चम्पा! चलो।''

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिए। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लि दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पा ने कहा—''बुधगुप्त! मेरे लि सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृद में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे, छोड़ दो इन निरी भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।''

''तब मैं अवश्व चला जाऊँगा, चम्पा! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ—इसमें सन्देह है। आह! इन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।''—महानायक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—''तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?''

''पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल से अन्वेषण करूँगी। किन्तु मैं जानती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।''

(7)

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, दीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया। ☐

आकाशदीप

शब्दार्थ—**शिथिल** = ढीले; **रज्जु** = रस्सी; **पुलकित** = प्रसन्न; **हर्षातिरेक** = प्रसन्नता की अधिकता; **तारक-खचित** = तारों से भरे; **कृपाण** = छोटी तलवार; **तूर्य** = बाजा; **तरंगें उद्वेलित** = लहरें ऊँची चढ़ने लगी; **कंदुक-क्रीड़ा** = गेंद का खेल; **अनन्त जलनिधि** = अपार सागर; **पोताध्यक्ष** = मुख्य नाविक; **द्वन्दयुद्ध** = कुश्ती; **शरद** = सर्दी; **उज्ज्वल** = स्वच्छ; **उच्चसौध** = ऊँचे महल; **अभ्रक की मंजूषा** = अभ्रक की संदूक; **शैल-मालायें** = पर्वत शृंखला; **मुखरित** = बजना; **दीर्घकाय** = बलशाली; **क्षीरनिधिशायी** = समुद्र में सोनेवाली; **उपकूल** = दुपट्टे; **विजन अनन्त** = निर्जन आकार; **दस्युवृत्ति** = डकैती; **भागीरथी** = गंगा; **उन्मादिनी** = पागल; **तरंग** = लहर; **विलीन** = गायब; **जलमग्न शैलखण्ड** = पानी में डूबा पर्वत; **प्राचीरों** = दीवारों; **विसर्जन** = बहा दे; **सिक्त** = गीला; **कम्पित** = काँपते; **निमग्न** = डूबी; **कुसुम-विभूषिता** = फूल से लज्जित; **शिविका** = नाव की डोली; **निस्सहाय** = असहाय; **संकीर्ण प्रकोष्ठ** = छोटा कमरा; **निरीह** = बेचारे; **उदित** = उगना; **आकांक्षा** = कामना; **विभवों** = वैभवों; **आलोक** = प्रकाश; **संतरण** = तैर।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. बंदी शीत मुक्ति के लिए क्या डालने की कामना करता है?
   (क) रजाई (ख) कम्बल
   (ग) गुदड़ी (घ) कोट
2. महिला बंदी ने नाव पर कितने नाविक और प्रहरी बताये?
   (क) चार (ख) आठ
   (ग) पाँच (घ) दस
3. बंदी से महिला बंदी से क्या काट सकने की बात पूछी?
   (क) पतवार (ख) पोत से सम्बद्ध रज्जु
   (ग) नाव पर बंधी पाल (घ) किनारे पर रेत की दीवार
4. पोत से पथप्रदर्शक ने चिल्लाकर क्या कहा?
   (क) सावधान (ख) तूफान
   (ग) आँधी (घ) ज्वार
5. नायक के पूछने पर बुद्धगुप्त ने मुक्त होने का श्रेय किसको दिया?
   (क) महिला बंदी को (ख) आँधी को
   (ग) पतवार को (घ) कृपाण को
6. प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का क्या चमक उठा?
   (क) विजयी कृपाण (ख) मुखमण्डल
   (ग) [illegible] (घ) नाव का ध्वज

7. नायक ने नाविकों को डाँड लगाने की आज्ञा दी और स्वयं .... पकड़कर बैठ गया। रिक्त स्थान पर शब्द आएगा।
(क) नाव का किनारा (ख) नाव की रस्सी
(ग) पतवार (घ) किनारे पर गढ़ा खूँटा (ग)

8. चम्पा के अनुसार उसे किसने बंदी बनाया?
(क) बुद्धगुप्त ने (ख) वणिक मणिभद्र की पाप वासना ने
(ग) पोताध्यक्ष ने (घ) नाविकों ने (ख)

9. चम्पा के पिता ने कितने दस्युओं को मारकर जल समाधि ली?
(क) दस (ख) पाँच
(ग) छः (घ) सात (घ)

10. चम्पा आजीवन किसमें आलोक जलाती रही?
(क) दीपस्थलों में (ख) नावों में
(ग) द्वीप में (घ) जल में (क)

प्रश्न

1. 'आकाशदीप' कहानी के शीर्षक की सार्थकता स्पष्ट कीजिए।
2. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर चम्पा का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. द्वीपवासी चम्पा की पूजा क्यों करने लगे?
4. 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।
5. चम्पा ने बुद्धगुप्त के साथ जाने से क्यों मनाकर दिया?

परदा

❑ *यशपाल*

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दारोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया था। लड़कों को पूरी तालीम दी थी। दोनों लड़के एंट्रेंस पास करके रेलवाई में और डाकखाने में बाबू हो गये थे। चौधरी साहब की जिंदगी में लड़कों के ब्याह और बाल-बच्चे भी हुए लेकिन ओहदों और तनख्वाह में खास तरक्की न हो सकी, तीस-चालीस रुपये महावार के दर्जे पर ही रहे।

चौधरी साहब अपने जमाने की याद कर कहते—वह भी क्या वक्त था। लोग मिडिल पास डिप्टी-कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एंट्रेंस तक अँग्रेजी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते। बेटों को ऊँचे ओहदे पर देखने का अरमान लिए उन्होंने आँखें मूँद ली थीं।

इंशाअल्ला, चौधरी साहब के कुनबे में बरक्कत हुई। चौधरी फजलकुर्बान रेलवाई में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियाँ दी थीं। चौधरी इलाहीबख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियाँ बख्शी थीं।

चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दारोगा साहब के जमाने में जनाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठकर नेचा गुड़गुड़ाया करते थे। उनके बाद जगह की तंगी की वजह से बैठक भी जनाने में शामिल हो गयी थी और घर की ड्योढ़ी पर पर्दा लटक गया था। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का खयाल था इसलिए परदा बोरी के टाट का ही नहीं, बढ़िया किस्म का लटकाया जाता था।

जाहिर है दोनों भाइयों के बाल-बच्चे एक ही मकान में रहते थे पर भीतर सब अलग-अलग था। ड्योढ़ी का परदा कौन भाई लाये? इस समस्या का हल यह हुआ कि दारोगा साहब के जमाने की पलंग की रंगी दरियाँ एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकाई जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह-शादी होने लगे। आखिर चौधरी खानदान की औलाद को हवेली से दूसरी जगह तलाश करनी पड़ी। चौधरी इलाहीबख्श के बड़े साहबजादे एंट्रेंस पास कर डाकखाने में बीस रुपये की क्लर्की पा गये। दूसरे साहबजादे मिडिल पास कर हस्पताल में कंपाउंडर बन गये। ज्यों-ज्यों जमाना गुजरता जाता, तालीम और नौकरी दोनों ही मुश्किल

होती जा रही थीं। तीसरे बेटे होनहार थे, उन्होंने वजीफा पाया। जैसे-तैसे मिडिल पास स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गये।

चौथे लड़के पीरबक्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम माँ-पर खर्च के बोझ के सिवाय और है क्या? स्कूल की फीस हर महीने और किताबों, कॉ और नक्शे के लिए रुपये-ही-रुपये।

चौधरी पीरबक्श का भी ब्याह हो गया था! मौला के करम से बीवी की गोद भी ज ही भर गयी। पीरबक्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्जत के खयाल से, एक की मिल में मुंशीगिरी कर ली थी। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या सफेदपोश खानदान की इ का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें ही न थीं। वह चौकी बैठते, कलम-दवात का काम था।

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबक्श को मकान सितवा की का बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास गरीब और कमीन लं की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचोंबीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से नि टपकते पानी की काली धार बहती रहती थी, नाली के किनारे घास उग आयी थी। न पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते थे। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी जिससे धुआं और सज्जी मिले उबले कपड़ों की गंध उड़ती रहती थी। दायीं ओर न्या बनाने वाले बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कु रहते थे।

उस पूरी बस्ती में चौधरी पीरबक्श ही पढ़े-लिखे और सफेदपोश थे। सिर्फ उ ही घर ड्योढ़ी पर परदा था। सब लोग उन्हें चौधरी जी, मुंशी जी कहकर सलाम क थे। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा था। इंशाअल्ला घर में औल थी तो वह भी लड़कियाँ। बच्चियाँ चार-पाँच बरस की उम्र तक किसी काम-काज से बा निकलतीं और फिर घर की आबरू के खयाल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न थ पीरबक्श खुद ही मुसकराते हुए सुबह-शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते थे।

चौधरी की तनख्वाह पन्द्रह बरस में बारह से अठारह हो गयी थी। खुदा की बरक्क होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं, आस-औलाद की शक्ल में होती है। पन्द्रह बर में पाँच बच्चे हुए थे। पहले तीन लड़कियाँ और बाद में दो लड़के।

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबक्श की वाल्दा मदद के लिए आयी थी। वालि साहब का इंतकाल को चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा को लिवा ले जाने के लिए न आया। वे छोटे लड़के के यहाँ ही रहने लगी थीं।

जहाँ बाल-बच्चे और घर-बार होता है सौ किस्म की झंझट होती ही हैं। कभी बच को तकलीफ है तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में कर्ज की जरूरत कैसे न हो। घर-बा है कर्ज भी होगा ही।

मिल की नौकरी का कायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनख्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ थी। कभी बहुत जरूरत पर ही मेहरबानी करते थे। जरूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी-मोटी चीज गिरवी रख उधार ले आते थे। गिरवी रखने से रुपये के बारह आने ही मिलते थे। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज के घर लौट आने की सम्भावना न रहती थी।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्जत थी। उस इज्जत का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सलामत रहता था। कभी बच्चों की खींच-खांच या बेदरद हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते तो परदे की आड़ में जनाने हाथ सुई-धागा लेकर उसकी मरम्मत कर देते थे।

दिनों का खेल! मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ गलते-गलते बिलकुल गल गये थे। कई बार कसे जाने से पेच टूट गये और सूराख ढीले पड़ गये। मकान मालिक सुरजू पांडे को उसकी फिक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते तो उत्तर मिलता, ''कौन बड़ी रकम थमा देते हो! दो रुपल्ली किराया और वह भी छः-छः महीने का बकाया। जानते हो, लकड़ी का क्या भाव है? न हो मकान छोड़ दो।'' आखिर किवाड़ गिर गये। रात में चौधरी उन्हें जैसे-तैसे चौखट से टिका देते। रात-भर दहशत रहती, अगर कोई चोर आ जाये?

मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्जत होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबुत कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा।

चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवारा था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आंधी में किसी भी हालत में लटकने लायक न रह गया था। दूसरे दिन सुबह घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज दरी दरवाजे पर लटका दी गयी। मुहल्ले वालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी, अरे चौधरी, इस जमाने में दरी को यों काहे खराब करोगे। बाजार से लाकर टाट का टुकड़ा न लटका दो! चौधरी पीरबक्श टाट की कीमत मिल से आते-जाते कई दफे पूछ चुके थे। दो गज टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हँसकर बोले, ''होने दो क्या है। हमारे यहाँ पक्की हवेली में ड्योढ़ी पर दरी का ही परदा रहता था।''

कपड़े की महँगी के जमाने में घर की पाँचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिरते जा रहे थे जैसे पेड़ अपनी छाल छोड़ देते हैं पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक बार किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहाँ थी? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता था। कुरते-पायजामे में जब पैबंद संभालने की ताब न रही तो मारकीन का एक कुरता-पायजामा जरूरी हो गया था, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिए घर में जब कुछ न हो गरीब का एकमात्र सहायक है, पंजा
खान! रहने की जगह-भर देखकर ही वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले
के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबक्श को रुपयों की जरूरत आ पड़ी थी। क
कोई प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबरअली खाँ से चार रुपये
ले लिये थे।

बबरअली खाँ का रोजगार सितवा के कच्चे घरों के मुहल्ले में अच्छा-खासा चल
था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मजदूर और कभी-कभी रमजानी धोबी सभी बबरअ
से कर्ज लेते रहते थे। कई दफे चौधरी पीरबक्श ने बबरअली को कर्ज और सूद की कि
न मिलने पर अपने दो हाथ के डंडे से ऋणी का दरवाजा पीटते देखा था, उन्हें साहूक
और ऋणी में बीच-बचाव भी करना पड़ा था। खान को वे शैतान समझते थे लेकिन लाच
हो जाने पर उसकी ही शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीना पर चार रुपया कर्ज लि
था। शरीफ खानदानी मुसलमान भाई का खयाल कर बबरअली ने एक रुपया माहवार
किस्त मान ली थी। आठ महीने में कर्ज अदा होना तय हुआ था।

खान की किस्त न दे सकने की हालत में अपने घर में दरवाजे पर फजीहत हो ज
की आशंका से चौधरी के रोएँ खड़े हो जाते। सात महीने फाका करके भी किसी तरह
किस्त देते चले गये लेकिन जब सावन में बरसात न हुई और बाजरा भी रुपये का
सेर मिलने लगा, ऋण की किस्त देना सम्भव न रहा था। खान सात तारीख की शाम
ही आया। चौधरी पीरबक्श ने खान की दाढ़ी छूकर और अल्ला की कसम खाकर ए
महीने की मुआफी चाही और अगले महीने एक का सवा देने का वायदा कर लिया। ख
ने मान लिया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गयी। बच्चों की माँ की तबीयत रोज-रो
गिरती ही जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता था। पथ्य के लिए उसे ग
की रोटी देना जरूरी हो गया था। गेहूँ मुश्किल से मिलता था और रुपये का सिर्फ पौ
दो सेर। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज के टुकड़े या धनिए की खुशबू के लिए ही मच
जाता। कभी पैसे की सौंफ, अजवायन; काला नमक की ही जरूरत हो तो पैसे की को
चीज मिलती ही नहीं थी। बाजार में ताँबे का नाम ही नहीं रह गया था; नाहक इकन्
जाती थी। चौधरी को चार रुपये महँगाई-भत्ते के भी मिले पर पेशगी लेते-लेते तनख्वा
के दिन केवल चार रुपये हिसाब में शेष निकले।

बच्चे पिछले हफ्ते में लगभग फाके से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौरा
खरीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा-कटोरा-भर पी लेते थे। बड़ी कठिन
से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया खान के हाथ में घर देने की हिम्मत चौधरी को
हुई।

दा

मिल से घर लौटते समय चौधरी मंडी की ओर टहल गये। दो घंटे बाद जब समझा खान टल गया होगा, अनाज की गठरी ले वे घर पहुँचे। खान के भय से दिल डूब था लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी माँ के दूध न उतर सकने के कारण ब कर काँटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार अपनी जईफ माँ की ब से बिलबिलाती सूरतें चौधरी की आँखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से कहते जा रहे थे, "मौला सब देखता है, खैर करेगा।"

सात तारीख की शाम को असफल हो खान आठ की सुबह खूब तड़के चौधरी के ल चले जाने से पहले ही अपना डंडा हाथ में लिये दरवाजे पर मौजूद था।

रात-भर सोच-सोचकर चौधरी ने खान के लिए बयान तैयार किया था—मिल के लिक लालाजी चार रोज के लिए बाहर गये थे। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी ख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाजिर करेगा।

माकूल वजह बता देने पर भी खान बहुत देर गुर्राता रहा, "अम बतन चोड़ के परदेस पड़ा है, ऐसे रुपिया चोड़ देने का वास्ते? अमारा भी बाल-बच्चा है। चार रोज में रुपिया ई देता तो अम तुम्हारा .... कर देगा।"

पाँचवें दिन रुपया कहाँ से आ जाता! तनख्वाह मिले हफ्ता-भर नहीं हुआ था। मालिक पेशगी देने से साफ इनकार कर दिया। छठे दिन किस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी हने पर भी चौधरी खान के डर से सुबह ही बाहर निकल गये थे। जान-पहचान के कई ादमियों के यहाँ गये। इधर-उधर बातचीत कर वे कहते, "अरे भाई, हों तो बीस आने से दो-एक रोज के लिए देना। ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।"

"अ मियां, पैसे कहाँ इस जमाने में ....." उत्तर मिलता, "पैसे का मोल कौड़ी नहीं ह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार चुकाने में सब उठ गया है ....!"

दोपहर हो गयी। खान आया भी होगा तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा, चौधरी ने ोचा और घर की तरफ चल दिये। घर पहुँचने पर सुना कि खान आया था और घंटे-भर तक ड्योढ़ी पर लटके दरी के परदे को डंडे से ठेल-ठेलकर गाली देता रहा था। परदे की आड़ से बड़ी-बी के बार-बार खुदा की कसम खा यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर ाये हैं, रुपया लेने गये हैं, खान गाली देकर कहता, 'नयीं बदजात, चोर बीतर में चिपा है! अम चार घंटे में पिर आता है। रुपिया लेकर जायेगा। रुपिया नईं देगा तो उसकी खाल उतारकर बाजार में बेच देगा ...... हमारा रुपिया क्या हराम का है?"

चार घंटे से पहले ही खान की पुकार सुनायी दी, "चोदरी!" पीरबक्श के शरीर में बिजली-सी तड़प गयी और वह बिलकुल निस्सत्व हो गये; हाथ-पैर सुन्न और गला खुश्क।

गाली दे परदे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव-प्राय होकर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गये। खान आग-बबूला हो रहा था, "पैसा नई देने के वास्ते चिपता है!" .... एक से एक चुभती हुई तीन गालियाँ एक साथ

खान के मुँह से पीरबक्श के पुरखों और पीरों के नाम निकल गये। उस भर्त्सना से पीरबक्श का खानदानी रक्त फड़क उठने के बजाये और भी निर्जीव हो गया। घुटने छूकर, अपनी मुसीबत बताकर मुआफी के लिए खुशामद करने लगे।

खान की तेजी बढ़ गयी। उसके ऊँचे स्वर से पड़ोस के मोची और मजदूर के दरवाजे के सामने इकट्ठे हो गये। खान क्रोध में डंडा फटकारकर कह रहा था, "नहीं देना था तो लिया क्यो? तनख्वाह किदर में जाता? अगमी अमारा पैसा मांगा। अम तुम्हारा खाल खींच लेगा। ...... पैसा नई है तो गर पर परदा लटका के शरीफ कैसे बनता? .... तुम अम को बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ भी दो! अम चला जायेगा .....।"

चौधरी पीरबक्श ने बिलकुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठाकर खुदा से के लिए दुआ मांगकर कसम खायी—पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी खान चाहे तो बेशक उनकी खाल उतारकर बेच ले।

खान और भी भड़क उठा, "अम तुम्हारा दुआ का क्या करेगा; अम तुम्हारा का क्या करेगा; उसका तो जूती भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्छा ... खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गयी। वह डगमगाकर जमीन पर गिर पड़े।

चौधरी में उस दृश्य को देख सकने की ताव न थी परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा- घर की औरतें और लड़कियाँ परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आँगन बीचोंबीच भय से इकट्ठी खड़ी हो काँप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें सिकुड़ गयीं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया हो! वह परदा ही तो घर-भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढकने में भी असमर्थ थे ....

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आँखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से थूक, परदे को आँगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने कहा, "लाहौल विला .....।" और असफल लौट गया।

भीड़ भय से चीखकर ओट में भागती हुई औरतों पर दया करके दरवाजे के पास से हट गयी थी। चौधरी बेसुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आँगन में सामने पड़ा था परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब उसकी आवश्यकता भी न रही थी।

परदा जिस भावना का अवलंब था, वह मर चुकी थी ....।

६. चम्पा ने बुद्धगुप्त के साथ जाने से क्या ...

परदा

शब्दार्थ—तालीम = शिक्षा; **ओहदों** = पदों; **तनख्वाह** = वेतन; **इंशाअल्ला** = ईश्वर की कृपा से; **बरक्कत** = बढ़ोतरी; **औलाद** = संतान; **वजीफा** = वृत्ति; **मुदर्रिस** = अध्यापक; करम = कृपा; **सफेदपोश** = शिष्ट; **बरक्कत** = दया; **वाल्दा** = माँ; **वालिद** = पिता; **कायदा** = नियम; **सलामत** = जीवित; **आबरू** = इज्जत; **जीर्ण** = कमजोर; **आमदनी** = आय; **पैबंद** ... पेशगी; **फजीहत** = झगड़ा; **मुआफी** = क्षमा; **पेशगी** = अग्रिम; **जईफ** = दुर्बल; **माकूल** = उपयुक्त; **आघात** = चोट; **जाहिल** = दुष्ट।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. चौधरी पीरबक्श के दादा किस पद पर कार्यरत थे?
   (क) दारोगा (ख) सिपाही
   (ग) मुंशी (घ) लेखपाल (क)
2. चौधरी के दादा किस विभाग में दारोगा थे?
   (क) सार्वजनिक निर्माण विभाग में (ख) जलदाय विभाग में
   (ग) चुंगी विभाग (घ) पंचायती विभाग (ग)

3. चौधरी साहब के जमाने में मिडिल पास क्या बन जाते थे?
   (क) दारोगा (ख) डिप्टी कलक्टर
   (ग) एस.पी. (घ) एस.डी.एम. (ख)
4. चौधरी खानदान अपने मकान को किस नाम से पुकारता था?
   (क) कोठी (ख) बंगला
   (ग) हाता (घ) हवेली (ग)
5. चौधरी इलाहीबक्श के पुत्र से एन्ट्रेन्स पास कर किस नौकरी पर नियुक्त हो गये?
   (क) डिप्टी कलक्टर (ख) दारोगा
   (ग) डाकखाने में कलकी (घ) मुंशी (ग)
6. पीरबक्श ने खानदान की इज्जत के खयाल से कहाँ मुंशीगिरी कर ली?
   (क) तेल की मिल में (ख) चुंगी में
   (ग) नगरपालिका में (घ) शिक्षा विभाग में (क)
7. घर की आबरू के खयाल से लड़कियों के लिए क्या मुनासिप नहीं था?
   (क) नौकरी करना (ख) दुकान करना
   (ग) बाहर निकलना (घ) खेलकूद करना (ग)
8. मुहल्ले में चौधरी पीरबक्श की इज्जत का आधार क्या था?
   (क) दरवाजे पर लटका परदा (ख) मुंशीगिरी
   (ग) सदस्यों का शिक्षित होना (घ) हवेली (क)
9. तेल के मिल मालिक ने क्या देने के साथ मना कर दिया?
   (क) कर्ज (ख) वेतन-वृद्धि
   (ग) घर के लिए अनाज (घ) पेशगी (घ)
10. दरवाजे पर पड़ा परदा किस भावना का अभिलम्ब था?
   (क) घर की शोभा बढ़ाने का (ख) अन्दर की गरीबी छिपाने का
   (ग) घर की इज्जत का (घ) बाहर की हवा रोकने का (ख)

प्रश्न

1. 'परदा' कहानी का मूल भावना अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'परदा' कहानी को विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. 'परदा' कहानी में परदा किसका प्रतीक है?
4. 'परदा' परिवार की घर स्थिति को अपने शब्दों में लिखिए।
5. 'परदा' कहानी के आधार पर यशपाल की कहानी कला पर निबंध लिखिए।

राजा निरबंसिया

□ *कमलेश्वर*

'एक राजा निरबंसिया थे', मां कहानी सुनाया करती थीं। उनके आस-पास ही चार-पांच बच्चे अपनी मुट्ठियों में फूल दबाए कहानी समाप्त होने पर गौरों पर चढ़ाने के लिए उत्सुक-से बैठ जाते थे। आटे का सुन्दर-सा चौक पुरा होता, उसी चौक पर मिट्टी की छह गौरें रखी जातीं, जिनमें से ऊपर वाली के बिन्दिया और सिन्दूर लगता, बाकी पांचों नीचे दबी पूजा ग्रहण करती रहतीं। एक ओर दीपक की बाती स्थिर-सी जलती रहती और मंगल-घट रखा रहता, जिस पर रोली से सथिया बनाया जाता। सभी बैठे बच्चों के मुख पर फूल चढ़ाने की उतावली की जगह कहानी सुनने की सहज स्थिरता उभर आती।

'एक राजा निरबंसिया थे', मां सुनाया करती थीं, 'उनके राज में बड़ी खुशहाली थी। सब वरण के लोग अपना-अपना काम-काज देखते थे। कोई दुखी नहीं दिखाई पड़ता था। राजा के एक लक्ष्मी-सी रानी थी, चंद्रमा-सी सुन्दर और और राजा को बहुत प्यारी। राजा राजकाज देखते और सुख से रानी के महल में रहते।'

मेरे सामने मेरे ख्यालों का राजा था, राजा जगपती! तब जगपती से मेरी दांत-काटी दोस्ती थी, दोनों मिडिल स्कूल में पढ़ने जाते। दोनों एक-से घर के थे, इसलिए बराबरी की निभती थी।

मैं मैट्रिक पास करके एक स्कूल में नौकर हो गया और जगपती कस्बे के ही वकील के यहां मुहर्रिर। जिस साल जगपती मुहर्रिर हुआ, उसी वर्ष पास के गाँव में उसकी शादी हुई, पर ऐसी हुई कि लोगों ने तमाशा बना देना चाहा। लड़कीवालों का कुछ विश्वास था कि शादी के बाद लड़की की विदा नहीं होगी।

ब्याह हो जाएगा और सातवीं भांवर तब पड़ेगी, जब पहली विदा की सायत होगी और तभी लड़की अपनी ससुराल जाएगी। जगपती की पत्नी थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी थी, पर घर की लीक को कौन मेटे! बारात बिना बहू के वापस आ गई और लड़केवालों ने तय कर लिया कि अब जगपती की शादी कहीं और कर दी जाएगी, चाहें कानी-लूली से हो, पर वह लड़की अब घर में नहीं आएगी। लेकिन साल खतम होते-होते सब ठीक-ठाक हो गया। लड़कीवालों ने माफी माँग ली और जगपती की पत्नी अपनी ससुराल आ गई। सास ने बहू की बलाइयाँ लेकर घर की

... कुछ मिल गया और

सब चाबियाँ सौंप दीं, गृहस्थी का ढंग-बार समझा दिया। जगपती की माँ न जाने कब ... आस लगाए बैठीं थीं। उन्होंने आराम की साँस ली। पूजा-पाठ में समय कटने ... दोपहरियाँ दूसरे घरों के आँगन में बीतने लगीं। पर साँस का रोग था उन्हें, सो ... उन्होंने अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते हुए चंदा को पास बुलाकर समझाया था, '... जगपती बड़े लाड़-प्यार का पला है। जब से तुम्हारे ससुर नहीं रहे तब से इसके छोटे-... हठ को पूरा करती रही हूँ अब तुम ध्यान रखना।' फिर रुककर उन्होंने कहा था, 'जग... किसी लायक हुआ है, तो रिश्तेदारों की आँखों में करकने लगा है। तुम्हारे बाप ने ... के वक्त नादानी की, जो तुम्हें विदा नहीं किया। मेरे दुश्मन देवर-जेठों को मौका मिल गया ... तूमार खड़ा कर दिया कि अब विदा करवाना नाक कटवाना है। जगपती का ब्याह क्या हुआ ... उन लोगों की छाती पर साँप लोट गया। सोचा, घर की इज्जत रखने की आड़ लेकर ... में भंग कर दें। अब बेटा, इस घर की लाज तुम्हारी लाज है। आज को तुम्हारे ससुर होते तो भला...' कहते कहते माँ की आँखों में आँसू आ गए, और वे जगपती की देखभाल ... सौंपकर सदा के लिए मौन हो गई थीं।

एक अरमान उनके साथ ही चला गया कि जगपती की सन्तान को, चार बरस इन्तजार करने के बाद भी वे गोद में न खिला पाईं। और चंदा ने मन में सब्र कर लिया था, यह सोचकर कि कुल-देवता का अंश तो उसे जीवन-भर पूजने को मिल गया था। घर में चारों तरफ जैसे उदारता बिखरी रहती, अपनापा बरसता रहता। उसे लगता, जैसे घर की अँधेरी एकान्त कोठरियों में यह शान्त शीतलता है जो उसे भरमा लेती है। घर की सब कुंडियों की खनक उसके कानों में बस गई थी, हर दरवाजे की चरमराहट पहचान बन गई थी।

'एक रोज राजा आखेट को गए', माँ सुनाती थीं, 'राजा आखेट को जाते थे, तो सातवें रोज जरूर महल में लौट आते थे। पर उस दफा जब गए, तो सातवाँ दिन निकल गया पर राजा नहीं लौटे। रानी को बड़ी चिन्ता हुई। रानी एक मंत्री को साथ लेकर खोज में निकलीं।'

और इसी बीच जगपती को रिश्तेदारी की एक शादी में जाना पड़ा। उसके दूर रिश्ते के भाई दयाराम की शादी थी। कह गया था कि दसवें दिन जरूर वापस आ जाएगा। पर छठे दिन ही खबर मिली कि बारात घर लौटने पर दयाराम के घर डाका पड़ गया। किसी मुखबिर ने सारी खबरें पहुँचा दी थीं कि लड़कीवालों ने दयाराम का घर सोने-चाँदी से पाट दिया है आखिर पुश्तैनी जमींदार की इकलौती लड़की थी। घर आए मेहमान लगभग विदा हो चुके थे। दूसरे रोज जगपती भी चलनेवाला था, पर उसी रात डाका पड़ा। जवान आदमी, भला खून मानता है! डाकेवालों ने जब बन्दूकें चलाई, तो सबकी घिग्घी बँध गई। पर जगपती और दयाराम ने छाती ठोककर लाठियाँ उठा लीं। घर में कोहराम मच गया। फिर सन्नाटा छा गया। डाकेवाले बराबर गोलियाँ दाग रहे थे। बाहर का दरवाजा टूट चुका था। पर जगपती ने हिम्मत बढ़ाते हुए हाँक लगाई, 'ये हवाई बन्दूकें इन तेल-पिलाई लाठियों का मुकाबला नहीं कर पाएँगी, जवानो।'

पर दरवाजे तड़-तड़ टूटते रहे, और अन्त में एक गोली जगपती की जाँघ को पार करती निकल गई, दूसरी उसकी जाँघ के ऊपर कूल्हे में समा कर रह गई।

चंदा रोती-कलपती और मनौतियाँ मानती जब वहाँ पहुँची, तो जगपती अस्पताल में था। दयाराम के थोड़ी चोट आई थी। उसे अस्पताल से छुट्टी मिल गई थी। जगपती की देखभाल के लिए वहीं अस्पताल में मरीजों के रिश्तेदारों के लिए जो कोठरियाँ बनीं थीं, उन्हीं में चंदा को रुकना पड़ा। कस्बे के अस्पताल से दयाराम का गाँव चार कोस पड़ता था। दूसरे-तीसरे वहाँ से आदमी आते-जाते रहते, जिस सामान की जरूरत होती, पहुँचा जाते।

पर धीरे-धीरे उन लोगों ने भी खबर लेना छोड़ दिया। एक दिन में ठीक होनेवाला घाव तो था नहीं। जाँघ की हड्डी चटख गई थी और कूल्हे में ऑपरेशन से छः इंच गहरा घाव था।

कस्बे का अस्पताल था। कंपाउंडर ही मरीजों की देखभाल रखते। बड़ा डॉक्टर तो नाम के लिए था या कस्बे के बड़े आदमियों के लिए। छोटे लोगों के लिए तो कम्पोटर साहब ही ईश्वर के अवतार थे। मरीजों की देखभाल करनेवाले रिश्तेदारों की खाने-पीने की मुश्किलों से लेकर मरीज की नब्ज़ तक सँभालते थे। छोटी-सी इमारत में अस्पताल आबाद था। रोगियों की सिर्फ छः-सात खाटें थी। मरीजों के कमरे से लगा दवा बनाने का कमरा था, उसी में एक ओर एक आरामकुर्सी थी और एक नीची-सी मेज। उसी कुर्सी पर बड़ा डॉक्टर आकर कभी-कभार बैठता था, नहीं तो बचनसिंह कंपाउंडर ही जमे रहते। अस्पताल में या तो फौजदारी के शहीद आते या गिर-गिरा के हाथ-पैर तोड़ लेनेवाले एक-आध लोग। छठे-छमासे कोई औरत दिख गई तो दीख गई, जैसे उन्हें कभी रोग घेरता ही नहीं था। कभी कोई बीमार पड़ती तो घरवाले हाल बताके आठ-दस रोज की दवा एक साथ ले जाते और फिर उसके जीने-मरने की खबर तक न मिलती।

उस दिन बचनसिंह जगपती के घाव की पट्टी बदलने आया। उसके आने में और पट्टी खोलने में कुछ ऐसी लापरवाही थी, जैसे गलत बँधी पगड़ी को ठीक से बाँधने के लिए खोल रहा हो। चंदा उसकी कुर्सी के पास ही साँस रोके खड़ी थी। वह और रोगियों से बात करता जा रहा था। इधर मिनट-भर को देखता, फिर जैसे अभ्यस्त-से उसके हाथ अपना काम करने लगते। पट्टी एक जगह खून से चिपक गई थी, जगपती बुरी तरह कराह उठा। चंदा के मुँह से चीख निकल गई। बचनसिंह ने सतर्क होकर देखा तो चंदा मुख में धोती का पल्ला खोंसे अपनी भयातुर आवाज दबाने की चेष्टा कर रही थी। जगपती एकबारगी मछली-सा तड़पकर रह गया। बचनसिंह की उँगलियाँ थोड़ी-सी थरथराई कि उसकी बाँह पर टप-से चंदा का आँसू चू पड़ा।

बचनसिंह सिहर-सा गया और उसके हाथों की अभ्यस्त निठुराई को जैसे किसी मानवीय कोमलता ने धीरे-से छू दिया। आहों, कराहों, दर्द-भरी चीखों और चटखते शरीर के जिस वातावरण में रहते हुए भी वह बिल्कुल अलग रहता था, फोड़ों को पके आम-सा दबा देता था, खाल को आलू-सा छील देता था उसके मन से जिस दर्द का अहसास

उठ गया था, वह उसे आज फिर हुआ और वह बच्चे की तरह फूँक-फूँककर पट्टी करके खोलने लगा। चंदा की ओर धीरे-से निगाह उठाकर देखते हुए फुसफुसाया, 'च.. रोगी की हिम्मत टूट जाती है ऐसे।'

पर जैसे यह कहते-कहते उसका मन खुद अपनी बात से उचट गया। यह वैप तो चीख और कराहों की एकरसता से उसे मिली थी, रोगी की हिम्मत बढ़ा कर्तव्यनिष्ठा से नहीं। जब तक वह घाव की मरहम-पट्टी करता रहा, तब तक कि आँखों की करुणा उसे घेरे रही।

और हाथ धोते समय वह चंदा की उन चूड़ियों से भरी कलाइयों को बेझिझक दे रहा, जो अपनी खुशी उससे माँग रही थीं। चंदा पानी डालती जा रही थी और बच हाथ धोते-धोते उसकी कलाइयों, हथेलियों और पैरों को देखता जा रहा था। दवाखा ओर जाते हुए उसने चंदा को हाथ के इशारे से बुलाकर कहा, 'दिल छोटा मत करना का घाव तो दस रोज में भर जाएगा, कूल्हे का घाव कुछ दिन जरूर लेगा। अच्छी से अ दवाई दूँगा। दवाइयाँ तो ऐसी हैं कि मुर्दे को चंगा कर दें। पर हमारे अस्पताल में नहीं अ फिर भी।' 'तो किसी दूसरे अस्पताल से नहीं आ सकतीं वो दवाइयाँ?' चंदा ने पू

'आ तो सकती हैं, पर मरीज को अपना पैसा खरचना पड़ता है उनमें।' बचनसि कहा।

चंदा चुप रह गई तो बचनसिंह के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा, 'किसी चीज जरूरत हो तो मुझे बताना। रही दवाइयाँ, सो कहीं न कहीं से इन्तजाम करके ला दूँ महकमे से मँगाएँगे, तो आते-अवाते महीनों लग जाएँगे। शहर के डॉक्टर से मँगवा दूँ ताकत की दवाइयों की बड़ी जरूरत है उन्हें। अच्छा, देखा जाएगा।' कहते-कहते वह गया।

चंदा से कृतज्ञता भरी नजरों से उसे देखा और उसे लगा जैसे आँधी में उड़ते पत्ते कोई अटकाव मिल गया हो। आकर वह जगपती की खाट से लगकर बैठ गई। उसकी हथे लेकर वह सहलाती रही। नाखूनों को अपने पोरों से दबाती रही।

धीरे-धीरे बाहर अँधेरा बढ़ चला। बचनसिंह तेल की एक लालटेन लाकर मरीज़ों कमरे के एक कोने में रख गया। चंदा ने जगपती की कलाई दाबते-दाबते धीरे से क 'कंपाउंडर साहब कह रहे थे।' और इतना कहकर वह जगपती का ध्यान आकृष्ट करने लिए चुप हो गई। 'क्या कह रहे थे?' जगपती अनमने स्वर में बोला।

'कुछ ताकत की दवाइयाँ तुम्हारे लिए जरूरी हैं!'

'मैं जानता हूँ।'

'पर।'

'देखो चंदा, चादर के बराबर ही पैर फैलाए जा सकते हैं। हमारी औकात इन दवाइ की नहीं है।

'औकात आदमी की देखी जाती है कि पैसे की, तुम तो।'

'देखा जाएगा।'

'कंपाउंडर साहब इन्तजाम कर देंगे, उनसे कहूँगी मैं।'

'नहीं चंदा, उधारखाते से मेरा इलाज नहीं होगा चाहे एक के चार दिन लग जाएँ।'

'इसमें तो।'

'तुम नहीं जानतीं, कर्ज कोढ़ का रोग होता है, एक बार लगने से तन तो गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है।'

'लेकिन...' कहते-कहते वह रुक गई।

जगपती अपनी बात की टेक रखने के लिए दूसरी ओर मुँह घुमाकर लेटा रहा।

और तीसरे रोज जगपती के सिरहाने कई ताकत की दवाइयाँ रखी थीं, और चंदा की ठहरने वाली कोठरी में उसके लेटने के लिए एक खाट भी पहुँच गई थी। चंदा जब आई, तो जगपती के चेहरे पर मानसिक पीड़ा की असंख्य रेखाएँ उभरी थीं, जैसे वह अपनी बीमारी से लड़ने के अलावा स्वयं अपनी आत्मा से भी लड़ रहा हो चंदा की नादानी और स्नेह से भी उलझ रहा हो और सबसे ऊपर सहायता करनेवाले की दया से जूझ रहा हो।

चंदा ने देखा तो यह सब सह न पाई। उसके जी में आया कि कह दे, क्या आज तक तुमने कभी किसी से उधार पैसे नहीं लिए? पर वह तो खुद तुमने लिए थे और तुम्हें मेरे सामने स्वीकार नहीं करना पड़ा था। इसीलिए लेते झिझक नहीं लगी, पर आज मेरे सामने उसे स्वीकार करते तुम्हारा झूठा पौरूष तिलमिलाकर जाग पड़ा है। पर जगपती के मुख पर बिखरी हुई पीड़ा में जिस आदर्श की गहराई थी, वह चंदा के मन में चोर की तरह घुस गई, और बड़ी स्वाभाविकता से उसने माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, 'ये दवाइयाँ किसी की मेहरबानी नहीं हैं। मैंने हाथ का कड़ा बेचने को दे दिया था, उसी में आई हैं।'

'मुझसे पूछा तक नहीं और...' जगपती ने कहा और जैसे खुद मन की कमजोरी को दाब गया—कड़ा बेचने से तो अच्छा था कि बचनसिंह की दया ही ओढ़ ली जाती। और उसे हल्का-सा पछतावा भी था कि नाहक वह रौ में बड़ी-बड़ी बातें कह जाता है, ज्ञानियों की तरह सीख दे देता है।

और जब चंदा अँधेरा होते उठकर अपनी कोठरी में सोने के लिए जाने को हुई, तो कहते-कहते यह बात दबा गई कि बचनसिंह ने उसके लिए एक खाट का इन्तजाम भी कर दिया है। कमरे से निकली, तो सीधी कोठरी में गई और हाथ का कड़ा लेकर सीधे दवाखाने की ओर चली गई, जहाँ बचनसिंह अकेला डॉक्टर की कुर्सी पर आराम से टाँगें फैलाए लैम्प की पीली रोशनी में लेटा था। जगपती का व्यवहार चंदा को लग गया था, और यह भी कि वह क्यों बचनसिंह का अहसान अभी से लाद ले, पति के लिए जेवर की कितनी औकात है। वह बेधड़क-सी दवाखाने में घुस गई। दिन की पहचान के कारण उसे कमरे की मेज-कुर्सी और दवाओं की अलमारी की स्थिति का अनुमान था, वैसे कमरा अँधेरा

ही पड़ा था, क्योंकि लैम्प की रोशनी केवल अपने वृत्त में अधिक प्रकाशवान होकर के अंधेरे को और भी घनीभूत कर रही थी। बचनसिंह ने चंदा को घुसते ही पहचान वह उठकर खड़ा हो गया। चंदा ने भीतर कदम तो रख दिया, पर सहसा सहम गई, वह किसी अंधेरे कुएँ में अपने-आप कूद पड़ी हो, ऐसा कुआँ, जो निरन्तर पतला गया है और जिसमें पानी की गहराई पाताल की पर्तों तक चली गई हो, जिसमें पड़ी नीचे धँसती चली जा रही हो, नीचे अँधेरा एकांत घुटन पाप!

बचनसिंह अवाक् ताकता रह गया और चंदा ऐसे वापस लौट पड़ी, जैसे किसी पिशाच के पंजों से मुक्ति मिली हो। बचनसिंह के सामने क्षण-भर में सारी परिस्थिति गई और उसने वहीं से बहुत संयत आवाज में जबान को दबाते हुए जैसे वायु में स्पष्ट कर दिया—'चंदा!' वह आवाज इतनी बे-आवाज थी और निरर्थक होते हुए भी सार्थक थी कि उस खामोशी में अर्थ भर गया। चंदा रुक गई। बचनसिंह उसके पास रुक गया।

सामने का घना पेड़ स्तब्ध खड़ा था, उसकी काली परछाईं की परिधि जैसे एक फैलकर उन्हें अपने वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर देती। दवाखाने लैम्प सहसा भभककर रुक गया और मरीज़ों के कमरे से एक कराह की आवाज दूर के छोर तक जाकर डूब गई।

चंदा ने वैसे ही नीचे ताकते हुए अपने को संयत करते हुए कहा, 'यह कड़ा तुम्हें आई थी।'

'तो वापस क्यों चली जा रही थीं?'

चंदा चुप। और दो क्षण रुककर उसने अपने हाथ का सोने का कड़ा धीरे-से उस ओर बढ़ा दिया, जैसे देने का साहस न होते हुए भी यह काम आवश्यक था।

बचनसिंह ने उसकी सारी काया को एक बार देखते हुए अपनी आँखें उसके सिर जमा दीं, उसके ऊपर पड़े कपड़े के पार नरम चिकनाई से भरे लम्बे-लम्बे बाल थे, जि भाप-सी महक फैलती जा रही थी। वह धीरे-धीरे से बोला, 'लाओ।'

चंदा ने कड़ा उसकी ओर बढ़ा दिया। कड़ा हाथ में लेकर वह बोला, 'सुनो।'

चंदा ने प्रश्न-भरी नजरें उसकी ओर उठा दी।

उनमें झाँकते हुए, अपने हाथ से उसकी कलाई पकड़ते हुए उसने वह कड़ा उस कलाई में पहना दिया। चंदा चुपचाप कोठरी की ओर चल दी और बचनसिंह दवाखाने ओर।

कालिख बुरी तरह बढ़ गई थी और सामने खड़े पेड़ की काली परछाईं गहरी पड़ थी। दोनों लौट गए थे। पर जैसे उस कालिख में कुछ रह गया था, छूट गया था। दवा का लैम्प जो जलते-जलते एक बार भभका था, उसमें तेल न रह जाने के कारण बत्ती लौ बीच से फट गई थी, उसके ऊपर धुएँ की लकीरें बल खाती, साँप की तरह अंधेरे विलीन हो जाती थीं।

सुबह जब चंदा जगपती के पास पहुँची और बिस्तर ठीक करने लगी तो जगपती को लगा कि चंदा बहुत उदास थी। क्षण-क्षण में चंदा के मुख पर अनगिनत भाव आ-जा रहे थे, जिनमें असमंजस था, पीड़ा थी और निरीहता थी। कोई अदृश्य पाप कर चुकने के बाद हृदय की गहराई से किए गए पश्चाताप जैसी धूमिल चमक?

'रानी मंत्री के साथ जब निराश होकर लौटीं, तो देखा, राजा महल में उपस्थित थे। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।' माँ सुनाया करती थीं, 'पर राजा को रानी का इस तरह मंत्री के साथ जाना अच्छा नहीं लगा। रानी ने राजा को समझाया कि वह तो केवल राजा के प्रति अटूट प्रेम के कारण अपने को न रोक सकी। राजा-रानी एक-दूसरे को बहुत चाहते थे। दोनों के दिलो में एक बात शूल-सी गड़ती रहती कि उनके कोई सन्तान न थी राजवंश का दीपक बुझने जा रहा था। सन्तान के अभाव में उनका लोक-परलोक बिगड़ा जा रहा था और कुल की मर्यादा नष्ट होने की शंका बढ़ती जा रही थी।'

दूसरे दिन बचनसिंह ने मरीजों की मरहम-पट्टी करते वक्त बताया था कि उसका तबादला मैनपुरी के सदर अस्पताल में हो गया है और वह परसों यहाँ से चला जाएगा। जगपती ने सुना, तो उसे भला ही लगा। आए दिन रोग घेरे रहते हैं, बचनसिंह उसके शहर के अस्पताल में पहुँचा जा रहा है, तो कुछ मदद मिलती ही रहेगी। आखिर वह ठीक तो होगा ही और फिर मैनपुरी के सिवा कहाँ जाएगा? पर दूसरे ही क्षण उसका दिल अकथ भारीपन से भर गया। पता नहीं क्यों, चंदा के अस्तित्व का ध्यान आते ही उसे इस सूचना में कुछ ऐसे नुकीले काँटे दिखाई देने लगे, जो उसके शरीर में किसी भी समय चुभ सकते थे, जरा-सा बेखबर होने पर बींध सकते थे। और तब उसके सामने आदमी के अधिकार की लक्ष्मण-रेखाएँ धुएँ की लकीर की तरह काँपकर मिटने लगीं और मन में छुपे सन्देह के राक्षस बाना बदल योगी के रूप में घूमने लगे।

और पन्द्रह-बीस रोज बाद जब जगपती की हालत सुधर गई, तो चंदा उसे लेकर घर लौट आई। जगपती चलने-फिरने लायक हो गया था। घर का ताला जब खोला, तब रात झुक आई थी। और फिर उनकी गली में तो शाम से ही अँधेरा झरना शुरू हो जाता था। पर गली में आते ही उन्हें लगा, जैसे कि वनवास काटकर राजधानी लौटे हों। नुक्कड़ पर ही जमुना सुनार की कोठरी में सुरही फिंक रही थी, जिसके दराजदार दरवाजों से लालटेन की रोशनी की लकीर झाँक रही थी और कच्ची तम्बाकू का धुआँ रुँधी गली के मुहाने पर बुरी तरह भर गया था। सामने ही मुंशीजी अपनी जिंगला खटिया के गड्ढ़े में, कुप्पी के मद्धिम प्रकाश में खसरा-खतौनी बिछाए मीजान लगाने में मशगूल थे। जब जगपती के घर का दरवाजा खड़का, तो अंधेरे में उसकी चाची ने अपने जँगले से देखा और वहीं से बैठे-बैठे अपने घर के भीतर ऐलान कर दिया—'राजा निरबंसिया अस्पताल से लौट आए कुलमाँ भी आई हैं।'

ये शब्द सुनकर घर के अँधेरे बरोठे में घुसते ही जगपती हाँफकर बैठ गया, झुंझलाकर चंदा से बोला, 'अंधेरे में क्या मेरे हाथ-पैर तुड़वाओगी? भीतर जाकर लालटेन जला लाओ न।'

'तेल नहीं होगा, इस वक्त जरा ऐसे ही काम।'

'तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा न तेल न।' कहते-कहते जगपती एकदम चुप रह गय और चंदा को लगा कि आज पहली बार जगपती ने उसके व्यर्थ मातृत्व पर इतनी ग चोट कर दी, जिसकी गहराई की उसने कभी कल्पना नहीं की थी। दोनों खामोश, बि एक बात किए अन्दर चले गए।

रात के बढ़ते सन्नाटे में दोनों के सामने दो बातें थीं—जगपती के कानों में जैसे को व्यंग्य से कह रहा था—राजा निरबंसिया अस्पताल से आ गए! और चंदा के दिल में बात चुभ रही थी—तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा।

और सिसकती-सिसकती चंदा न जाने कब सो गई। पर जगपती की आँखों में नी न आई। खाट पर पड़े-पड़े उसके चारों ओर एक मोहक, भयावना-सा जाल फैल गय लेटे-लेटे उसे लगा, जैसे उसका स्वयं का आकार बहुत क्षीण होता-होता बिन्दु-सा रह गय पर बिन्दु के हाथ थे, पैर थे और दिल की धड़कन भी। कोठरी का घुटा-घुटा-सा अँधियार मटमैली दीवारें और गहन गुफाओं-सी अलमारियाँ, जिनमें से बार-बार झाँककर देखता और वह सिहर उठता था फिर जैसे सब कुछ तब्दील हो गया हो। उसे लगा कि उसक आकार बढ़ता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है। वह मनुष्य हुआ, लम्बा-तगड़ा-तन्दुरूस्त पुरु हुआ, उसकी शिराओं में कुछ फूट पड़ने के लिए व्याकुलता से खौल उठा। उसके हाथ शरी के अनुपात से बहुत बड़े, डरावने और भयानक हो गए, उनके लम्बे-लम्बे नाखून निक आए वह राक्षस हुआ, दैत्य हुआ आदिम बर्बर!

और बड़ी तेज़ी से सारा कमरा एकबारगी चक्कर काट गया। फिर सब धीरे-धीरे स्थि होने लगा और उसकी साँसें ठीक होती जान पड़ीं। फिर जैसे बहुत कोशिश करने पर घिग्घ बँध जाने के बाद उसकी आवाज फूटी, 'चंदा!'

चंदा की नरम साँसों की हल्की सरसराहट कमरे में जान डालने लगी। जगपती अपन पाटी का सहारा लेकर झुका। काँपते पैर उसने जमीन पर रखे और चंदा की खाट के पा से सिर टिकाकर बैठ गया। उसे लगा, जैसे चंदा की इन साँसों की आवाज में जीवन क संगीत गूँज रहा है। वह उठा और चंदा के मुख पर झुक गया। उस अँधेरे में आँखें गड़ाए-गड़ाए जैसे बहुत देर बाद स्वयं चंदा के मुख पर आभा फूटकर अपने-आप बिखरने लगी उसके नक्श उज्ज्वल हो उठे और जगपती की आँखों को ज्योति मिल गई। वह मुग्ध-सा ताकता रहा।

चंदा के बिखरे बाल, जिनमें हाल के जन्मे बच्चे के गभुआरे बालों की-सी महक दूध की कचाइंध शरीर के रस की-सी मिठास और स्नेह-सी चिकनाहट और वह माथा जिस पर बालों के पास तमाम छोटे-छोटे, नरम-नरम-नरम-से रोएँ रेशम से और उस पर कभी लगाई गई सेंदुर की बिन्दी का हल्का मिटा हुआ-सा आभास नन्हें-नन्हें निर्द्वन्द्व सोए पलक! और उनकी मासूम-सी काँटों की तरह बरौनियाँ और साँस में घुलकर आती हुई

आत्मा की निष्कपट आवाज की लय फूल की पंखुरी-से पतले-पतले ओंठ, उन पर अछूती रेखाएँ, जिनमें सिर्फ दूध-सी महक!

उसकी आँखों के सामने ममता-सी छा गई, केवल ममता, और उसके मुख से अस्फुट निकल गया, 'बच्ची!'

डरते-डरते उसके बालों की एक लट को बड़े जतन से उसने हथेली पर रखा और उँगली से उस पर जैसे लकीरें खींचने लगा। उसे लगा, जैसे कोई शिशु उसके अंक में आने के लिए छटपटाकर, निराश होकर सो गया हो। उसने दोनों हथेलियों को पसारकर उसके सिर को अपनी सीमा में भर लेना चाहा कि कोई कठोर चीज उसकी उँगलियों से टकराई। वह जैसे होश में आया।

बड़े सहारे से उसने चंदा के सिर के नीचे टटोला। एक रूमाल में बंधा कुछ उसके हाथ में आ गया। अपने कों संयत करता वह वहीं जमीन पर बैठ गया, उसी अँधेरे में उस रूमाल को खोला, तो जैसे साँप सूँघ गया, चंदा के हाथों के दोनों सोने के कड़े उसमें लिपटे थे!

और तब उसके सामने सब सृष्टि धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरने लगी। ये कड़े तो चंदा बेचकर उसका इलाज कर रही थी। वे सब दवाइयाँ और ताकत के टॉनिक उसने तो कहा था, ये दवाइयाँ किसी की मेहरबानी नहीं हैं, मैंने हाथ के कड़े बेचने को दे दिए थे पर उसका गला बुरी तरह सूख गया। जबान जैसे तालु से चिपककर रह गई। उसने चाहा कि चंदा को झकाझोरकर उठाए, पर शरीर की शक्ति बह-सी गई थी, रक्त पानी हो गया था।

थोड़ा संयत हुआ, उसने वे कड़े उसी रूमाल में लपेटकर उसकी खाट के कोने पर रख दिए और बड़ी मुश्किल से अपनी खाट की पाटी पकड़कर लुढ़क गया।

चंदा झूठ बोली! पर क्यों? कड़े आज तक छुपाए रही। उसने इतना बड़ा दुराव क्यों किया? आखिर क्यों? किसलिए? और जगपती का दिल भारी हो गया। उसे फिर लगा कि उसका शरीर सिमटता जा रहा है और वह एक सींक का बना ढाँचा रह गया नितांत हल्का, तिनके-सा, हवा में उड़कर भटकने वाले तिनके-सा।

उस रात के बाद रोज जगपती सोचता रहा कि चंदा से कड़े माँगकर बेच ले और कोई छोटा-मोटा कारोबार ही शुरू कर दे, क्योंकि नौकरी छूट चुकी थी। इतने दिन की गैरहाजिरी के बाद वकील साहब ने दूसरा मुहर्रिर रख लिया था। वह रोज यही सोचता पर जब चंदा सामने आती, तो न जाने कैसी असहाय-सी उसकी अवस्था हो जाती। उसे लगता, जैसे कड़े माँगकर वह चंदा से पत्नीत्व का पद भी छीन लेगा। मातृत्व तो भगवान ने छीन ही लिया वह सोचता आखिर चंदा क्या रह जाएगी? एक स्त्री से यदि पत्नीत्व और मातृत्व छीन लिया गया, तो उसके जीवन की सार्थकता ही क्या? चंदा के साथ वह यह अन्याय कैसे करे? उससे दूसरी आँख की रोशनी कैसे माँग ले? फिर तो वह नितांत अंधी हो जाएगी

और उन कड़ों की माँगने के पीछे जिस इतिहास की आत्मा नंगी हो जाएगी, कैसे
लज्जा को स्वयं ही उधारकर ढाँपेगा?

और वह उन्हीं खयालों में डूबा सुबह से शाम तक इधर-उधर काम की टोह में
रहता। किसी से उधार ले ले? पर किस सम्पत्ति पर? क्या है उसके पास, जिसके
पर कोई उसे कुछ देगा? और मुहल्ले के लोग जो एक-एक पाई पर जान देते
चीज खरीदते वक्त भाव में एक पैसा कम मिलने पर मीलों पैदल जाकर एक पैसा
हैं, एक-एक पैसे की मसाले की पुड़िया बँधवाकर ग्यारह मर्तबा पैसों का हिसाब
एकाध पैसा उधारकर, मिन्नतें करते सौदा घर लाते हैं; गली में कोई खोंचेवाला फँसे
तो दो पैसे की चीज को लड़-झगड़कर—चार दाने ज़्यादा पाने की नीयत से
बँधवाते हैं। भाव के जरा-से फर्क पर घंटों बहस करते हैं, शाम को सड़ी-गली तर
को किफायत के कारण लाते हैं, ऐसे लोगों से किस मुँह से माँगकर वह उनकी ग
अहसास पर ठोकर लगाए!

पर उस दिन शाम को जब वह घर पहुँचा, तो बरोठे में ही एक साइकिल रखी
आई। दिमाग पर बहुत ज़ोर डालने के बाद भी वह आगन्तुक की कल्पना न कर
भीतरवाले दरवाज़े पर जब पहुँचा, तो सहसा हँसी की आवाज सुनकर ठिठक गया।
हँसी में एक अजीब-सा उन्माद था। और उसके बाद चंदा का स्वर –

'अब आते ही होंगे, बैठिए न दो मिनट और! अपनी आँख से देख लीजिए और
समझाते जाइए कि अभी तन्दुरूस्ती इस लायक नहीं, जो दिन-दिन-भर घूमना बर्दाश्त
सकें।'

'हाँ भई, कमजोरी इतनी जल्दी नहीं मिट सकती, खयाल नहीं करेंगे तो नुक
उठाएँगे!' कोई पुरुष-स्वर था यह।

जगपती असमँजस में पड़ गया। वह एकदम भीतर घुस जाए? इसमें क्या हर्ज
पर जब उसने पैर उठाए, तो वे बाहर जा रहे थे। बाहर बरोठे में साइकिल को पकड़
उसे सूझ आई, वहीं से जैसे अनजान बनता बड़े प्रयत्न से आवाज को खोलता चिल्ला
'अरे चंदा! यह साइकिल किसकी है? कौन मेहरबान।'

चंदा उसकी आवाज सुनकर कमरे से बाहर निकलकर जैसे खुश-खबरी सुना रही
'अपने कंपाउंडर साहब आए हैं। खोजते-खोजते आज घर का पता पाए हैं, तुम्हारे इन्त
में बैठे हैं।'

'कौन बचनसिंह? अच्छा अच्छा। वही तो मैं कहूँ, भला कौन।' कहता जगपती
पहुँचा, और बातों में इस तरह उलझ गया, जैसे सारी परिस्थिति उसने स्वीकार कर ली
बचनसिंह जब फिर आने की बात कहकर चला गया, तो चंदा ने बहुत अपनेपन
जगपती के सामने बात शुरू की, 'जाने कैसे-कैसे आदमी होते हैं।'

'क्यों, क्या हुआ? कैसे होते हैं आदमी?' जगपती ने ...

'इतनी छोटी जान-पहचान में तुम मर्दों के घर में न रहते घुसकर बैठ सकते हो? तुम तो उल्टे पैरों लौट आओगे।' चंदा कहकर जगपती के मुख पर कुछ इच्छित प्रतिक्रिया देख सकने के लिए गहरी निगाहों से ताकने लगी।

जगपती ने चंदा की ओर ऐसे देखा, जैसे यह बात भी कहने की या पूछने की है! फिर बोला, 'वचनसिंह अपनी तरह का आदमी है, अपनी तरह का अकेला।

'होगा पर' कहते-कहते चंदा रुक गई।

'आड़े वक्त काम आने वाला आदमी है, लेकिन उससे फायदा उठा सकना जितना आसान है उतना मेरा मतलब है कि जिससे कुछ लिया जाएगा, उसे दिया भी जाएगा।' जगपती ने आँखें दीवार पर गड़ाते हुए कहा।

और चंदा उठकर चली गई।

उस दिन के बाद वचनसिंह लगभग रोज ही आने-जाने लगा। जगपती उसके साथ इधर-उधर घूमता भी रहता। वचनसिंह के साथ वह जब तक रहता, अजीब-सी घुटन उसके दिल को बाँध लेती, और तभी जीवन की तमाम विषमताएँ भी उसकी निगाहों के सामने उभरने लगतीं, आखिर वह स्वयं एक आदमी है बेकार यह माना कि उसके सामने पेट पालने की कोई इतनी विकराल समस्या नहीं, वह भूखों नहीं मर रहा है, जाड़े में काँप नहीं रहा है, पर उसके दो हाथ-पैर हैं शरीर का पिंजरा है, जो कुछ माँगता है कुछ! और वह सोचता, यह कुछ क्या है? सुख? शायद हाँ, शायद नहीं। वह तो दुःख में भी जी सकने का आदी है, अभावों में जीवित रह सकने वाला आश्चर्यजनक कीड़ा है। तो फिर वासना? शायद हाँ, शायद नहीं। चंदा का शरीर लेकर उसने उस क्षणिकता को भी देखा है। तो फिर धन शायद हाँ, शायद नहीं। उसने धन के लिए अपने को खपाया है। पर वह भी तो उस अदृश्य प्यास को बुझा नहीं पाया। तो फिर? तो फिर क्या? वह कुछ क्या है, जो उसकी आत्मा में नासूर-सा रिसता रहता है, अपना उपचार माँगता है? शायद काम! हाँ, यही, बिल्कुल यही, जो उसके जीवन की घड़ियों को निपट सूना न छोड़े, जिसमें वह अपनी शक्ति लगा सके, अपना मन डुबो सके, अपने को सार्थक अनुभव कर सके, चाहे उसमें सुख हो या दुख, अरक्षा हो या सुरक्षा, शोषण हो या पोषण उसे सिर्फ काम चाहिए! करने के लिए कुछ चाहिए। यही तो उसकी प्रकृत आवश्यकता है, पहली और आखिरी माँग है, क्योंकि वह उस घर में नहीं पैदा हुआ, जहाँ सिर्फ जबान हिलाकर शासन करनेवाले होते हैं। वह उस घर में भी नहीं पैदा हुआ, जहाँ सिर्फ माँगकर जीनेवाले होते हैं। वह उस घर का है, जो सिर्फ काम करना जानता है, काम ही जिसकी आस है। सिर्फ वह काम चाहता है, काम।

और एक दिन उसकी काम-धाम की समस्या भी हल हो गई। तालाब वाले ऊँचे मैदान के दक्षिण ओर जगपती की लकड़ी की टाल खुल गई। बोर्ड तक टंग गया। टाल की जमीन पर लक्ष्मी-पूजन भी हो गया और हवन भी हुआ। लकड़ी की कोई कमी नहीं थी। गाँव से आनेवाली गाड़ियों को, इस कारोबार में पैरे हुए आदमियों की मदद से मोल-तोल करवा

के यहाँ गिरवा दिया गया। गाँठें एक ओर रखी गईं, चैलों का चट्टा करीने से लग गया और गुद्दे चीरने के लिए डाल दिए गए। दो-तीन गाड़ियों का सौदा करके टाल चालू कर दी गई। भविष्य में स्वयं पेड़ खरीदकर कटाने का तय किया गया। बड़ी-बड़ी स्कीमें बनीं कि किस तरह जलाने की लकड़ी से बढ़ाते-बढ़ाते एक दिन इमारती लकड़ी की कोठी बनेगी। चीरने की नई मशीन लगेगी। कारबार बढ़ जाने पर बचनसिंह भी नौकरी छोड़कर उसी में लग जाएगा। और उसने महसूस किया कि वह काम में लग गया है, अब चौबीसों घंटे उसके सामने काम है उसके समय का उपयोग है। दिन-भर में वह एक घंटे के लिए किसी का मित्र हो सकता है, कुछ देर के लिए वह पति हो सकता है, पर बाकी समय? दिन और रात के बाकी घंटे उन घंटों के अभाव को सिर्फ उसका अपना काम ही कर सकता है और अब वह कामदार था।

वह कामदार तो था, लेकिन जब टाल की उस ऊँची जमीन पर पड़े छप्पर के नीचे तखत पर वह गल्ला रखकर बैठता, सामने लगे लकड़ियों के ढेर, कटे हुए पेड़ के तने, जड़ों को लुढ़का हुआ देखता, तो एक निरीहता बरबस उसके दिल को बाँधने लगती। उसे लगता, एक व्यर्थ पिशाच का शरीर टुकड़े-टुकड़े करके उसके सामने डाल दिया गया है। फिर इन पर कुल्हाड़ी चलेगी और इनके रेशे-रेशे अलग हो जाएँगे और तब इनकी ठठरियों को सुखाकर किसी पैसेवाले के हाथ तक पर तौलकर बेच दिया जाएगा।

और तब उसकी निगाहें सामने खड़े ताड़ पर अटक जातीं, जिसके बड़े-बड़े पत्तों पर सुर्ख गर्दनवाले गिद्ध पर फड़फड़ाकर देर तक खामोश बैठे रहते। ताड़ का काला गड़रेदार तना और उसके सामने ठहरी हुई वायु में निस्सहाय काँपती, भारहीन नीम की पत्तियाँ चकराती झड़ती रहतीं धूल-भरी धरती पर लकड़ी की गाड़ियों के पहियों की पड़ी हुई लीक धुँधली-सी चमक उठती और बगलवाले मूँगफल्ली के पेंच की एकरस खरखराती आवाज कानों में भरने लगती। बगलवाली कच्ची पगडंडी से कोई गुजरकर, टीले के ढलान से तालाब की नीचाई में उतर जाता, जिसके गंदले पानी में कूड़ा तैरता रहता और सूअर कीचड़ में मुँह डालकर उस कूड़े को रौंदते।

दोपहर सिमटती और शाम की धुंध छाने लगती, तो वह लालटेन जलाकर छप्पर के खंभे की कील में टाँग देता और उसके थोड़ी ही देर बाद अस्पतालवाली सड़क से बचनसिंह एक काले धब्बे की तरह आता दिखाई पड़ता।

गहरे पड़ते अँधेरे में उसका आकार धीरे-धीरे बढ़ता जाता और जगपती के सामने जब वह आकर खड़ा होता, तो वह उसे बहुत विशाल-सा लगने लगता, जिसके सामने उसे अपना अस्तित्व डूबता महसूस होता।

एक-आध बिक्री की बातें होतीं और तब दोनों घर की ओर चल देते। घर पहुँचकर बचनसिंह कुछ देर जरूर रुकता, बैठता, इधर-उधर की बातें करता। कभी मौका पड़ जाता, तो जगपती और बचनसिंह की थाली भी साथ लग जाती। चंदा सामने बैठकर दोनों को खिलाती।

बचनसिंह बोलता जाता, 'क्या तरकारी बनी है। मसाला ऐसा पड़ा है कि उसकी भी बहार है और तरकारी का स्वाद भी न मरा। होटलों में या तो मसाला ही मसाला रहेगा या सिर्फ तरकारी ही तरकारी। वाह! वाह! क्या बात है अन्दाज की!'

और चंदा बीच-बीच में टोककर बोलती जाती, 'इन्हें तो जब तक दाल में प्याज का भुना घी न मिले, तब तक पेट ही नहीं भरता।' या—'सिरका अगर इन्हें मिल जाए, तो समझो, सब कुछ मिल गया। पहले मुझे सिरका न जाने कैसा लगता था, पर अब ऐसा जबान पर चढ़ा है कि।'

या—'इन्हें कागज-सी पतली रोटी पसन्द ही नहीं आती। अब मुझसे कोई पतली रोटी बनाने को कहे, तो बनती ही नहीं, आदत पड़ गई है, और फिर मन ही नहीं करता।'

पर चंदा की आँखें बचनसिंह की थाली पर ही जमीं रहतीं। रोटी निबटी, तो रोटी परोस दी, दाल खत्म नहीं हुई, तो भी एक चमचा और परोस दी।

और जगपती सिर झुकाए खाता रहता। सिर्फ एक गिलास पानी माँगता और चंदा चौंककर पानी देने से पहले कहती, 'अरे तुमने तो कुछ लिया भी नहीं!' कहते-कहते वह पानी दे देती और तब उसके दिल पर गहरी-सी चोट लगती, न जाने क्यों वह खामोशी की चोट उसे बड़ी पीड़ा दे जाती पर वह अपने को समझा लेती, कोई मेहमान तो नहीं हैं माँग सकते थे। भूख नहीं होगी।

जगपती खाना खाकर टाल पर लेटने चला जाता, क्योंकि अभी तक कोई चौकीदार नहीं मिला था। छप्पर के नीचे तख्त पर जब वह लेटता, तो अनायास ही उसका दिल भर-भर आता। पता नहीं कौन-कौन से दर्द एक-दूसरे से मिलकर तरह-तरह की टीस, चटख और ऐंठन पैदा करने लगते। कोई एक रग दुखती तो वह सहलाता भी, जब सभी नसें चटखती हों तो कहाँ-कहाँ राहत का अकेला हाथ सहलाए!

लेटे-लेटे उसकी निगाह ताड़ के उस ओर बनी पुख्ता कब्र पर जम जाती, जिसके सिराहने कँटीला बबूल का एकाकी पेड़ सुन्न-सा खड़ा रहता। जिस कब्र पर एक पर्दानशीन औरत बड़े लिहाज से आकर सवेरे-सवेरे बेला और चमेली के फूल चढ़ा जाती घूम-घूमकर उसके फेरे लेती और माथा टेककर कुछ कदम उदास-उदास-सी चलकर एकदम तेजी से मुड़कर बिसातियों के मुहल्ले में खो जाती। शाम होते फिर आती। एक दीया बारती और अगर की बत्तियाँ जलाती, फिर मुड़ते हुए ओढ़नी का पल्ला कन्धों पर डालती, तो दीये की लौ काँपती, कभी काँपकर बुझ जाती, पर उसके कदम बढ़ चुके होते, पहले धीमे, थके, उदास-से और फिर तेज सधे सामान्य-से। और वह फिर उसी मुहल्ले में खो जाती और तब रात की तनहाइयों में बबूल के काँटों के बीच, उस साँय-साँय करते ऊँचे-नीचे मैदान में जैसे उस कब्र से कोई रूह निकलकर निपट अकेली भटकती रहती।

तभी ताड़ पर बैठे सुर्ख गर्दनवाले गिद्ध मनहूस-सी आवाज में किलबिला उठते और ताड़ के पत्ते भयानकता से खड़बड़ा उठते। जगपती का बदन काँप जाता और वह भटकती

रूह जिन्दा रह सकने के लिए जैसे कब्र की ईंटों में, बबूल के साये-तले दुबक जगपती अपनी टाँगों को पेट से भींचकर, कंबल से मुँह छुपा औंधा लेट जाता।

तड़के ही ठेके पर लगे लकड़हारे लकड़ी चीरने आ जाते। तब जगपती कंबल घर की ओर चला जाता।

'राजा रोज सवेरे टहलने जाते थे,' माँ सुनाया करती थीं, 'एक दिन जैसे ही के बाहर निकलकर आए कि सड़क पर झाड़ू लगानेवाली मेहतरानी उन्हें देखते ही झाड़ूपंजा पटककर माथा पीटने लगी और कहने लगी, 'हाय राम! आज राजा निर का मुँह देखा है, न जाने रोटी भी नसीब होगी कि नहीं न जाने कौन-सी विपत टूट राजा को इतना दुःख हुआ कि उल्टे पैरों महल को लौट गए। मंत्री को हुक्म दिया कि मेहतरानी का घर नाज से भर दें। और सब राजसी वस्त्र उतार, राजा उसी क्षण जंगल ओर चले गए। उसी रात रानी को सपना हुआ कि कल की रात तेरी मनोकामना करनेवाली है। रानी बहुत पछता रही थी। पर फौरन ही रानी राजा को खोजती-खोजती सराय में पहुँच गई, जहाँ वह टिके हुए थे। रानी भेस बदलकर सेवा करने वाली भटियारी बनकर राजा के पास रात में पहुँची। रातभर उनके साथ रही और सुबह राजा के जगने पहले सराय छोड़ महल में लौट गई। राजा सुबह उठकर दूसरे देश की ओर चले गए। ही दिनों में राजा के निकल जाने की खबर राज-भर में फैल गई, राजा निकल गए, चा तरफ यही खबर थी।'

और उस दिन टोले-मुहल्ले के हर आँगन में बरसात के मेह की तरह यह खब बरसकर फैल गई कि चंदा के बाल-बच्चा होने वाला है।

नुक्कड़ पर जमुना सुनार की कोठरी में फिंकती सुरही रुक गई। मुंशीजी ने अपन मीजान लगाना छोड़ विस्फारित नेत्रों से ताककर खबर सुनी। बंसी किरानेवाले ने कुएँ में से आधी गई रस्सी खींच, डोल मन पर पटककर सुना। सुदर्शन दर्जी ने मशीन के पहिए को हथेली से रगड़कर रोककर सुना। हंसराज पंजाबी ने अपनी नील-लगी मलगुजी कमीज की आस्तीनें चढ़ाते हुए सुना। और जगपती की बेवा चाची ने औरतों के जमघट में बड़े विश्वास, पर भेद-भरे स्वर में सुनाया—'आज छह साल हो गए शादी को न बाल, न बच्चा न जाने किसका पाप है उसके पेट में। और किसका होगा सिवा उस मुसटण्डे कम्पोटर के! न जाने कहाँ से कुलच्छनी इस मुहल्ले में आ गई! इस गली की तो पुश्तों से ऐसी मरजाद रही है कि गैर-मर्द औरत की परछाई तब नहीं देख पाए। यहाँ के मर्द तो बस अपने घर की औरतों को जानते हैं, उन्हें तो पड़ोसी के घर की जनानियों की गिनती तक नहीं मालूम।' यह कहते-कहते उनका चेहरा तमतमा आया और सब औरतें देवलोक की देवियों की तरह गम्भीर बनी, अपनी पवित्रता की महानता के बोझ से दबी धीरे-धीरे खिसक गई।

सुबह यह खबर फैलने से पहले जगपती टाल पर चला गया था। पर सुनी उसने भी आज ही थी। दिन-भर वह तख्त पर कोने की ओर मुँह किए पड़ा रहा। न ठेके की लकड़ियाँ चिराई, न बिक्री की ओर ध्यान दिया, न दोपहर का खाना खाने ही घर गया। जब रात अच्छी

= खटकने, **तूमार** = विवाद, **आड़** = ओट (बहाना), **अरमान** = आकांक्षा, **अपनापा** = अपनापन, **कुंडियों** = सांकलों, **मुखबिर** = खबर देने वाला, **पुश्तैनी** = पैतृक, **कोहराम** = अशांति, **हाँक** = आवाज, **मनौतियाँ** = धार्मिक अनुष्ठान (मनौती मानना), **चटख** = टूटना, **आबाद** = बसा हुआ, **फौजदारी** = हिंसक झगड़े, **थरथराई** = काँपी, **निठुराई** = निष्ठुरता, **चंगा** = स्वस्थ, **महकमे** = विभाग, **दाब** = छिपा, **नाहक** = बेकार, **वृत्त** = गोले (आसपास), **घनीभूत** = गहरा, **संयत** = संभली हुई, **निरर्थक** = व्यर्थ, **विलीन** = गायब, **निरीहता** = बेचारापन, **धूमिल** = धुंधली, **शूल** = कांटे, **अकथ** = न कहने लायक, **मुहाने** = प्रारम्भ, **जिंगला** = टूटी-फूटी, **खसरा-खतौनी** = जमीन के कागजात, **मीजान** = हिसाब, **मशगूल** = व्यस्त, **कुलमाँ** = कुलकलंकिनी, **बरोठे** = बरामदे, **तब्दील** = बदलना, **आदिम बर्बर** = पैदायशी क्रूर, **आभा** = चमक, **नक्श** = रंग-रूप, **महक** = गंध, **कचाइंध** = कच्चेपन की गंध, **निर्द्वन्द्व** = निडर (मस्त), **अस्फुट** = अस्पष्ट, **दुराव** = छुपाव, **नितांत** = बहुत, **कारोबार** = उद्योग, **टोह** = खोज, **मर्तबा** = बार, **उन्माद** = मस्ती, **बर्दाश्त** = सहन, **पोषण** = पालन, **प्रकृत** = स्वाभाविक, **निरीहता** = बेचारापन, **बरबस** = जानबूझकर, **सुर्ख** = लाल, **गड़ेदार** = गाँठों वाले, **पुख्ता** = मजबूत, **विसातियों** = जटिलताओं, **बारती** = जलाती, **तनहाइयों** = एकाकीपन, **मनहूस-सी** = अशुभ, **नसीब** = भाग्य में, **विपत** = आपदा, **नाज** = अन्न, **विस्फारित** = फैले हुए, **मलगुजी** = मैली, **आस्तीनें** = बाँहें, **पुश्तों** = पीढ़ियों, **मरजाद** = मर्यादा, **जनानियों** = नारियों, **हिम-शीतल** = बर्फ जैसा ठंडा, **निहारते-निहारते** = देखते-देखते, **कमनीयता** = कोमलता, **सुरमई** = हलकी काली, **कलुष** = पाप, **शापवश** = शाप से, **निर्वासित** = निकाली गयी, **अतिशय** = अधिक, **सैलाब** = बाढ़, **निस्तब्धता** = चुप्पी, **अवज्ञा** = उपेक्षा, **वीराने** = एकांत, **दड़े** = पेड़, **पतरिया** = पतले, **उखट** = निर्जीव, **पतेल** = पत्तों, **नाहक** = व्यर्थ, **कुलबोरन** = कुल को डुबाने वाले।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'निरवंसिया' शब्द का क्या तात्पर्य है?

   (क) मूर्तिकार (ख) बिना औलाद के

   (ग) पुत्रवान (घ) कृपण (ख)

2. जगपती की शादी के समय पत्नी के विदा होने की सायत कब तय होने की शर्त रखी गयी?

   (क) इक्कीस वर्ष पूर्ण होने पर

   (ख) विवाह के पांच साल बाद

   (ग) विदा के समय सातवीं भांवर के समय

   (घ) ग्रामीण परम्परा के अनुसार (ग)

3. जगपती की शादी से परिवार वालों और रिश्तेदारों की क्या स्थिति हुई?

   (क) किसी को पीड़ा न हुई (ख) सभी फूले न समाये

   (ग) कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई (घ) छाती पर साँप लोट गये (घ)

4. अस्पताल में जगपती के इलाज में बचनसिंह ने क्यों मदद की?
   (क) चन्दा पर मोह भाव के कारण
   (ख) घरवालों के दबाव में आकर
   (ग) धन के लालच में आकर
   (घ) अपना कर्तव्य निभाने के लिए (क)

5. बचनसिंह के तबादले के समाचार से जगपती को कैसी अनुभूति हुई?
   (क) विस्मय (ख) दुख
   (ग) निराशा (घ) प्रसन्नता

6. बचनसिंह के चन्दा के हाथ की कलाई पकड़कर क्या किया?
   (क) कड़ा पहना दिया (ख) मरोड़ दिया
   (ग) चूम लिया (घ) सहलाने लगा

7. चन्दा तथा बचनसिंह की हंसी में जगपती को क्या लगा?
   (क) तानाबाजी (ख) प्रेम
   (ग) उन्माद (घ) खुलापन

8. जगपती ने चन्दा को बचनसिंह के बारे में बताया—
   (क) वह स्वार्थी है
   (ख) अपनी तरह का अकेला आदमी
   (ग) वह बेईमान है
   (घ) वह बहुत सीधा आदमी है (ख)

9. जगपती जितनी देर बचनसिंह के साथ रहता क्या महसूस करता?
   (क) खुशी (ख) अवसाद
   (ग) घुटन (घ) पीड़ा (ग)

10. लकड़ी चीरने वाले लड़के जब टाल पर आ जाते तो जगपती क्या लपेट कर घर चला जाता?
   (क) कम्बल (ख) चद्दर
   (ग) धोती (घ) गमछा (क)

प्रश्न

1. 'राजा निरबंसिया' कहानी की रचनात्मक समीक्षा कीजिए।
2. 'राजा निरबंसिया' कहानी में दो समानान्तर कथानक हैं—क्रमलेश्वर ने ये कथानक क्यों रखे हैं?
3. 'राजा निरबंसिया' कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
4. चंदा का चरित्र-चित्रण कीजिए।
5. जगपती के मानसिक संघर्ष को स्पष्ट कीजिए।

गदल

❑ रांगेय राघव

बाहर शोरगुल मचा। डोड़ी ने पुकारा—"कौन है?" कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज है—"हत्यारिन। तुझे कत्ल कर दूँगा।"

स्त्री का स्वर आया—"करके तो देख! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गई, पूते!"

डोड़ी बैठा न रह सका। बाहर आया।

"क्या करता है, क्या करता है, निहाल?" डोड़ी बढ़कर चिल्लाया, "आखिर तेरी मां है।"

"मैया है!" कहकर निहाल हट गया।

"अरे तू हाथ उठाके तो देख!" स्त्री ने फुफकारा, "कढ़ी खाए! तेरी सींक पर गोलियाँ चलवा दूँ! समझ रखियो! मत जान रखियो, हाँ! तेरी आसरतू नहीं हूँ।"

"भाभी!" डोड़ी ने कहा, "क्या बकती है? होश में आ!"

वह आगे बढ़ा। उसने मुड़कर कहा, "जाओ सब! तुम सब लोग जाओ!"

निहाल हट गया। उसके साथ ही सब लोग इधर-उधर हो गए।

डोड़ी निस्तब्ध छप्पर के नीचे लगा बरेंडा पकड़े खड़ा रहा। स्त्री वहीं बिफरी हुई-सी बैठी रही। उसकी आँखों में आग-सी जल रही थी।

उसने कहा, "मैं जानती हूँ, निहाल में इतनी हिम्मत नहीं। यह सब तैने किया है, देवर!"

"हाँ, गदल!" डोड़ी ने धीरे से कहा, "मैंने ही किया है!"

गदल सिमट गई, "कहा क्यों, तुझे क्या जरूरत थी?"

डोड़ी कह नहीं सका। वह ऊपर से नीचे तक झनझना उठा। पचास साल का वह लम्बा खारी गूजर, उसकी मूँछें खिचड़ी हो चुकी थीं, छप्पर तक पहुँचा-सा लगता था! उसके कन्धे की चौड़ी हड्डियों पर अब दीवे का हल्का प्रकाश पड़ रहा था। उसके शरीर पर मोटी फतूही थी और उसकी धोती घुटनों के नीचे उतरने के पहले ही झूल देकर चुस्त-

सी ऊपर की ओर लौट जाती थी। उसका हाथ कर्रा था और वह इस समय निस्त...
रहा।

स्त्री उठी। वह लगभग 45 वर्षीया थी, उसका रंग गोरा होने पर भी आयु के...
में अब मैला-सा दीखने लगा था। उसको देखकर लगता था कि वह फुर्तीली थी।...
कठोर मेहनत करने से, उसकी गठन के ढीले पड़ने पर भी, उसकी फुर्ती अभी त...
थी।

"तुझे शरम नहीं आती, गदल?" डोड़ी ने पूछा।

"क्यों, शरम क्यों आएगी?" गदल ने पूछा।

डोड़ी क्षणभर सकते में पड़ गया। भीतर से चौबारे से आवाज आई, "श...
आएगी इसे? शरम तो उसे आए, जिसकी आँखों में हया बची हो।"

"निहाल!" डोड़ी चिल्लाया, "तू चुप रह।"

फिर आवाज बन्द हो गई।

गदल ने कहा, "मुझे क्यों बुलाया है तूने?"

डोड़ी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। पूछा, "रोटी खाई है?"

"नहीं।" गदल ने कहा, "खाती भी कब? कमबख्त रास्ते में मिले। खेत हो...
रही थी। रास्ते में अरने-कण्डे बीनकर के लिए जा रही थी।"

डोड़ी ने पुकारा, "निहाल! बहू से कह, अपनी सास को रोटी दे जाए।"

भीतर से किसी स्त्री की ढीठ आवाज सुनाई दी, "अरे, अब लौहारों की बै...
है; उन्हें क्या गरीब खारियों की रोटी भाएगी?"

कुछ स्त्रियों ने ठहाका लगाया।

निहाल चिल्लाया, "सुन ले परमेसुरी, जगहँसाई हो रही है। खारियों की तो तू...
कटाकर छोड़ी।"

(2)

गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गई। गदल का बड़ा बेटा...
तीस बरस के पास पहुँच रहा था। उसकी बहू दुल्लो का बड़ा बेटा सात का, दूस...
का और तीसरी छोरी थी, जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तरा-ऊपर...
बहिनों—थीं चम्पा और चमेली, जिनका, क्रमश: झाज और बिस्वारा गाँवों में ब्याह...
था। आज उनकी गोदियों से उनके लाल उतरकर धूल में घुटरुवन चलने लगे थे।...
पुत्र नरायन बाईस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल...

डोड़ी गुन्ना का सगा भाई था। बहू थी, बच्चे भी हुए। सब मर गए। अपनी जगह अकेला रह गया। गुन्ना ने बड़ी-बड़ी कही, पर वह फिर अकेला ही रहा, उसने ब्याह नहीं किया, गदल ही के चूल्हे पर खाता रहा, कमाकर लाता, तो उसी को दे देता, उसी के बच्चों को अपना मानता, कभी उसने अलगाव नहीं किया। निहाल अपने चाचा पर जान देता था। और फिर खारी गूजर अपने को लौहारों से ऊँचा समझते थे।

गदल जिसके घर जा बैठी थी, उसका पूरा कुनबा था। उसने गदल की उम्र नहीं देखी, यह देखा कि खारी औरत है, पड़ी रहेगी। चूल्हे पर दम फूँकने वाली की जरूरत भी थी।

आज ही गदल सबेरे गई थी और शाम को उसके बेटे उसे फिर बाँध लाए थे। उसके नए पति मौनी को अभी पता नहीं हुआ होगा। मौनी रँडुआ था। उसकी भाभी जो पाँव फैलाकर मटक-मटककर छाछ बिलोती थी, दुल्लो सुनेगी, तो क्या कहेगी?

गदल का मन विक्षोभ से भर उठा।

(3)

आधी रात हो चली थी। गदल वहीं पड़ी थी। डोड़ी वहीं बैठा चिलम फूँक रहा था। उस सन्नाटे में डोड़ी ने धीरे से कहा, ''गदल!''

''क्या है?'' गदल ने हौले से कहा।

''तू चली गई न?''

गदल बोली नहीं। डोड़ी ने फिर कहा, ''सब चले जाते हैं। एक दिन तेरी देवरानी चली गई, फिर एक-एक करके तेरे भतीजे चले गए। भैया भी चला गया। पर तू जैसे गई वैसे तो कोई भी नहीं गया। जग हँसता है, जानती है?''

गदल ने बरबराया, ''जगहँसाई से मैं नहीं डरती, देवर! जब चौदह की थी, तब तेरा भैया मुझे गाँव में देख गया था। तू उसके साथ तेल पिया लट्ठ लेकर मुझे लेने आया था न, तब? मैं आई थी कि नहीं? तू सोचता होगा कि गदल की उमर गई, अब उसे खसम की क्या जरूरत है? पर जानता है, मैं क्यों गई?''

''नहीं।''

''तू तो बस यही सोचा करता होगा कि गदल गई, अब पहले-सा रोटियों का आराम नहीं रहा। बहुएँ नहीं करेंगी तेरी चाकरी, देवर! तूने भाई से और मुझसे निभाई, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा। बोल, झूठ कहती हूँ?''

''नहीं, गदल, मैंने कब कहा।''

''बस यही बात है, देवर! अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया। जीते जी मैंने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की चाकरी बजाई। पर जब मालिक ही न रहा, तो काहे को हड़कम्प उठाऊँ! ये लड़के, ये बहुएँ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी!''

''पर क्या सब तेरी औलाद नहीं, बावरी? बिल्ली तक अपने जायों के लिए सात उलट-फेर करती है, फिर तू तो मानुस है। तेरी माया-ममता कहाँ चली गई?''

''देवर, तेरी कहाँ चली गई थी, जो तूने ब्याह न किया?''

''तुझे तेरा सहारा था, गदल!''

''कायर! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया, तब तू पु रखकर घर नहीं बसा सकता था। तूने मुझे पेट के लिए पराई ड्योढ़ी लँघवाई। चूल्हा तो तब फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नहीं हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों के बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी। समझा, देवर! तू तो नहीं कहा तब। अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी, तब सोचा, तब न सोचा, जब तेरी गदल को बहुओं ने आँखें तरेरकर देखा। अरे, कौन किसी की परवाह करता है!''

''गदल!'' डोड़ी ने भर्राए स्वर में कहा, ''मैं डरता था।''

''भला क्यों तो?''

''गदल, मैं बुड्ढ़ा हूँ। डरता था, जग हँसेगा। बेटे सोचेंगे, शायद चाचा का अम्मा से पहले से ही नाता था, तभी तो चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया। गदल, भैया की भी बदनामी होती न?''

''अरे, चल रहने दे!'' गदल ने उत्तर दिया, ''भैया का बड़ा ख्याल रहा तुझे! तू नहीं था कारज में उनके क्या? मेरे ससुर मरे थे, तब मेरे भैया ने बिरादरी को जिमाकर ओंठों से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाए? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, यही बेटे हैं? पच्चीस आदमी बुलाए कुल। क्यों आखिर? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलस पचीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जाएगी! डरपोक कहीं के! मैं नहीं रहती ऐसों के।''

हठात् डोड़ी का स्वर बदला। कहा, ''मेरे रहते तू पराए मरद के घर जा बैठेगी?''

''हाँ।''

''अबके तो कह!'' वह उठकर बढ़ा।

''सौ बार कहूँ लाला।'' गदल पड़ी बोली। डोड़ी बढ़ा।

''बढ़।'' गदल ने फुफकारा।

डोड़ी रुक गया। गदल देखती रही। डोड़ी जाकर बैठ गया। गदल देखती रही। फिर हँसी। कहा, ''तू मुझे करेगा! तुझमें हिम्मत कहाँ है, देवर? मेरा नया मरद है न? मरद है। इतनी सुन तो ले भला। मुझे लगता है, तेरा भइया ही फिर मिल गया है मुझे। तू?'' वह रुकी। ''मरद है? अरे कोई बैयर से घिघियाता है। बढ़कर जो तू मुझे मारता, तो मैं समझती, तू अपनापा मानता है। मैं इस घर में रहूँगी।''

डोड़ी देखता ही रह गया। रात गहरी हो गई। गदल ने लहँगे की पर्तें फैलाकर तन ढँक लिया। डोड़ी ऊँघने लगा।

(4)

...ने में दुल्लो ने अँगड़ाई लेकर कहा, "आ गई देवरानीजी। रात कहाँ रहीं?"
...डूब गया था। आकाश में पौ फट रही थी। बैल अब उठकर खड़े हो गए थे।
...एक ठण्डक थी।

...ने तड़ाक से जवाब दिया, "सौ, जिठानी मेरी! हुकुम नहीं चला मुझ पर। तेरी ...हैं मेरी। देवर के नाते देवरानी हूँ, तेरी जूती नहीं।"

...सकपका गई। मौनी उठा ही था। भन्नाया हुआ आया। बोला, "कहाँ गई थी?"

...ने घूँघट खींच लिया, पर आवाज नहीं बदली। कहा, "वही ले गए मुझे घेरकर। ...निकल आई।"

...दब गया। मौनी का बाप बाहर से ही ढोर हाँक ले गया। मौनी बढ़ा।

"कहाँ जाता है?" गदल ने पूछा।

"...तहार।"

"पहले मेरा फैसला कर जा।" गदल ने कहा।

...उस अधेड़ स्त्री के नक्शे देखकर अचरज में खड़ी रही।

"कैसा फैसला?" मौनी ने पूछा। वह उस बड़ी स्त्री से दब गया था।

"अब क्या तेरे घर-भर का पीसना पीसूँगी मैं?" गदल ने कहा। "हम तो दो जने ...करेंगे, खाएँगे।" उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह कहती रही, "कमाई ...करो, मैं नहीं रोकती, पर भीतर तो अलग-अलग भले।"

मौनी क्षणभर सन्नाटे में खड़ा रहा। दुल्लो तिनककर निकली। बोली, "अब चुप क्यों ...देवर? बोलता क्यों नहीं? मेरी देवरानी लाया है कि सास! तेरी बोलती क्यों नहीं ...? ऐसा न समझियो तू मुझे! रोटी तवा पर पलटते मुझे भी आँच नहीं लगती, जो मैं ...खरी-खोटी सुन लूँगी, समझा? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मिट्टी खाके ही जना ..."

"अरी तो, सौत!" गदल ने पुकारा। "मट्टी न खाके आई, सारे कुनबे को चबा जाएगी, ...! ऐसी नहीं तेरी गुड़ की भेली है, जो न खाएँगे हम, तो रोटी गले में फन्दा मार ...।"

मौनी उत्तर नहीं दे सका। वह बाहर चला गया।

दुपहर हो गई थी। दुल्लो बैठी चरखा कात रही थी। नरायन ने आकर आवाज दी, "...है?"

दुल्लो ने घूँघट काढ़ लिया। पूछा, "कौन हो?"

नरायन ने खून का घूँट पीकर कहा, "गदल का बेटा हूँ।"

दुल्लो घूँघट में हँसी। पूछा, "छोटे हो कि बड़े?"

"छोटा।"

"और कितने हैं?"

"कित्ते भी हों। तुझे क्या?" गदल ने निकलकर कहा।

"अरे आ गई!" कहकर दुल्लो भीतर भागी।

"आने दे आज उसे। तुझे बता दूँगी, जिठानी।" गदल ने सिर हिलाकर

"अम्मा!" नरायन ने कहा, "यह तेरी जिठानी है?"

"क्यों आया है तू, यह बता!" गदल झल्लाई।

"दण्ड धरवाने आया हूँ अम्मा।" कहकर नरायन आगे बैठने को बढ़ा।

"वहीं रह।" गदल ने कहा।

उसी समय लोटा-डोर लिए मौनी लौटा। उसने देखा कि गदल ने अपने हँसुली उतारकर फेंक दी और कहा, "भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो। सम थाने में रपट कर दूँगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर बहुओं के कहने से निकाल दिया है।"

नरायन का मुँह स्याह पड़ गया। वह गहने उठाकर चला गया। मौनी मन-शंकित-सा भीतर आया।

दुल्लो ने शिकायत की, "सुना तूने, देवर! देवरानी ने गहने दे दिए। घुटना पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डण्डा-धु लग जाएँगी। पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगाएगा। समझा देती हूँ। तुम भोले-भाले तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो? धन्धा है, यह भी अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।

गदल हँसी, "वाह, जिठानी! पुराने मरद का मोल नए मरद से तेरे घर की चुकवाती होंगी। गदल तो मालकिन बनकर रहती है, समझी; बाँदी बनकर नहीं। करूँगी तो अपने मरद की, नहीं तो बिधना मेरे ठैंगे पर। समझी! तू बीच में बोलने कौन?"

दुल्लो ने रोष से देखा और पाँव पटकती चली गई।

मौनी ने देखा और कहा, "बहुत बढ़-बढ़कर बातें मत हाँक। समझ ले, घर बनके रह।"

"अरे तू तो तब पैदा भी नहीं हुआ था बालम।" गदल ने मुस्कराकर कहा, से मैं सब जानती हूँ। मुझे क्या सिखाता है तू? ऐसा कोई मैंने काम नहीं किया है, जो बि के नेम के बाहर हो। जब तू देख मैंने ऐसी कोई बात की हो, तो हजार बार रोक, प की टसक नहीं सहूँगी।"

"तो बताऊँ तुझे।" वह सिर हिलाकर बोला।

गदल हँसकर ओबरी में चली गई और काम में लग गई।

(5)

ठण्डी हवा तेज हो गई थी। डोड़ी चुपचाप बाहर छप्पर में बैठा हुक्का पी रहा था। पीते-पीते ऊब गया और उसने चिलम उलट दी और फिर बाहर बैठा रहा।

खेत से लौटकर निहाल ने बैल बाँधे, न्यार डाला और कहा, "काका!"

डोड़ी कुछ सोच रहा था। उसने सुना नहीं।

"काका!" निहाल ने स्वर उठाकर कहा।

"हैं!" डोड़ी चौंक उठा, "क्या है? मुझसे कहा कुछ?"

"तुमसे न कहूँगा, तो कहूँगा किससे? दिनभर तो तुम मिले नहीं। चिम्मन कढ़ेरा कहता था, तुमने दिनभर मनमौजी बाबा की धूनी के पास बिताया। यह सच है?"

"हाँ, बेटा, चला तो गया था।"

"क्यों गए थे भला?"

"ऐसे ही जी किया था, बेटा।"

"और कस्बे से बनिए का आदमी आया था, घी कटऊ का क्या कराया, मैंने कहा नहीं है, वह बोला, लेके जाऊँगा। झगड़ा होते-होते बचा।"

"ऐसा नहीं करते, बेटा।" डोड़ी ने कहा, "बौहरे से कोई झगड़ा मोल लेता है?"

निहाल ने चिलम उठाई, कण्डों में से आँच बीनकर धरी और फूँक लगाता हुआ आया। कहा, "मैं तो गया नहीं। सिर फूट जाते। नरायन को भेजा था।"

"कहाँ?" डोड़ी चौंका।

"उसी कुलच्छनी कुलबोरनी के पास।"

"अपनी माँ के पास?"

"न जाने तुम्हें उससे क्या है, अब भी तुम्हें उस पर गुस्सा नहीं आता। उसे माँ कहूँगा मैं?"

"पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी माँ ही कहेगा। जब तक मरद जीता है, लोग बैयर को मरद की बहू कहकर पुकारते हैं, जब मरद जाता है, तो लोग उसे बेटे की अम्मा कहकर पुकारते हैं। कोई नया नेम थोड़े ही है।"

निहाल भुनभुनाया। कहा, "ठीक है, काका ठीक है, पर तुमने अभी तक यह तो पूछा ही नहीं कि क्यों भेजा था उसे?"

"हाँ बेटा।" डोड़ी ने चौंककर कहा, "यह तो तूने बताया ही नहीं! बता न?"

गदल

शब्दार्थ—**सींक पर बिलियाँ चलवाना** = परेशान करना; **आसरतू** = भरोसे; **हया** = ज्जा; **बैयर** = औरत; **चाकरी** = सेवा; **कारज** = मृत्युभोज; **डौर** = जगह; **बगबगाएगा** = ोभित होना; **नेम** = नियम; **ओबरी** = अन्दर का कमरा; **रार** = मतभेद।

स्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'आसरतू' शब्द का तात्पर्य है—
   (क) आश्रित (ख) बेसहारा
   (ग) आशा में (घ) आसराहीन (क)
2. 'खिचड़ी मूंछे' कैसी होती है?
   (क) लम्बी (ख) नुकीली
   (ग) गहरी काली (घ) काली-सफेद (घ)
3. निहाल का गदल से क्या रिश्ता है?
   (क) बहन-भाई का (ख) माँ-बेटे का
   (ग) भावी-देवर का (घ) पति-पत्नी का (ख)
4. गदल का पति कौन था?
   (क) निहाल (ख) परमेपुरी
   (ग) मुन्ना (घ) डोडी (ग)
5. 'मैंने ही तुझे अपना समझा' वाक्य में 'तुझे' कौन है?
   (क) निहाल (ख) डोडी
   (ग) मुन्ना (घ) परमेसुरी (ख)
6. 'तेरी जूती नहीं' का तात्पर्य है—
   (क) दासी (ख) मालिक
   (ग) अनुयायी (घ) सहारे (क)
7. गदल के छोटे बेटे का नाम है—
   (क) निहाल (ख) मौनी
   (ग) डोडी (घ) नरायन (घ)
8. 'वौहरा' कौन होता है?
   (क) मालिक (ख) जो उधार देता है
   (ग) जमींदार (घ) कृषक (ख)
9. डोडी ने गदल के जाने का कारण क्या बताया?
   (क) धन के लोभ से (ख) नये घर के लोभ से
   (ग) रूठकर (घ) दण्ड भरने के लिए (ग)

10. गदल ने कहा 'बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका'—कैसे?
(क) गदल के गहने लेकर
(ख) गदल को छोड़कर
(ग) मुन्ना को छोड़कर
(घ) मुन्ना के मरने पर पच्चीस लोगों को दावत देकर (घ)

प्रश्न

1. गदल कहानी की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. गदल का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. गदल कहानी में जिस अंचल का चित्रण हुआ है उसकी विशेषताओं पर निबन्ध लिखिए।
4. गदल कहानी का हिन्दी कहानी साहित्य में महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
5. गदल कहानी के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
6. गदल ने मौनी से क्यों विवाह किया?
7. डोड़ी के मन में गदल के प्रति क्या भाव था?
8. पुलिस गाँव में क्यों आयी?
9. गदल ने डोड़ी के मरने पर मृत्युभोज क्यों आयोजित किया?

सिक्का बदल गया

शब्दार्थ—दरिया = नदी, **नीरवता** = शांति, **अरसा** = अवधि, **बरकतें** = कृपा से समृद्धि, **रब्ब** = ईश्वर, **प्रतिहिंसा** = बदले, **मूर्तिवत्** = स्थिर, **असामियाँ** = कृषिकर्म में साथी, **मसीत** = मस्जिद, **सलामत** = सुरक्षित।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'सिक्का बदल गया' कहानी किसने लिखी है?
(क) मन्नू भण्डारी (ख) मृदुला गर्ग (ग)
(ग) कृष्णा सोबती (घ) उषा प्रियंवदा

2. किस नदी का पानी काफी सर्द था?
(क) चनाब का (ख) सतलज का (क)
(ग) यमुना का (घ) सिंधु का

3. शाहनी सोचती है—क्या?
(क) वह बहुत सुन्दर है
(ख) वह चनाब में नहाती रही है
(ग) वह नदी किनारे घूमी है (घ)
(घ) एक दिन दरिया के किनारे दुल्हन बनकर आयी थी

4. शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है—शाहनी को ऐसा क्यों लगा—
   (क) उसे बचपन की याद आ रही है
   (ख) शायद पिछली स्मृतियाँ परेशान कर रही है
   (ग) शाहजी की याद आ गयी
   (घ) उसे कोई अपना नहीं मानता (घ)
5. शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदमों से कौन चल रहा है?
   (क) शाहजी (ख) शेरा
   (ग) फिरोज (घ) दाउद खाँ (ख)
6. दाउद खाँ किसको देखकर ड्योढ़ी पर ठिठक गया?
   (क) शेरा को (ख) शाहजी को
   (ग) निर्जीव छात्रा को (घ) फिरोज को (ग)
7. शाहजी अस्फुट स्वर में क्या बोले?
   (क) उसे अच्छा नहीं लग रहा
   (ख) वह नहीं जाएगी
   (ग) उसकी तबीयत ठीक नहीं है
   (घ) सोना-चाँदी (घ)
8. शाहजी को नकदी किससे प्यारी नहीं है?
   (क) इस घर से (ख) शाहजी से
   (ग) सोना-चाँदी से (घ) शेरा से (क)
9. शाहनी ने किससे सिर ढांका?
   (क) साड़ी से (ख) रुमाल से
   (ग) दुपट्टे से (घ) चद्दर से (ग)
10. इस्माइल ने भारी आवाज में शाहजी से कुछ कहने के लिए क्यों कहा?
   (क) शाहनी विदा हो रही थी
   (ख) शाहनी झूठ नहीं बोलती
   (ग) शाहनी का मैं साथ है
   (घ) शाहनी की असीस झूठ नहीं हो सकती (घ)

प्रश्न

1. 'सिक्का बदल गया' कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।
2. शाहनी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'सिक्का बदल गया' कहानी का संदेश क्या ह?
4. कृष्णा सोबती की कहानी कला पर निवंध लिखिए।
5. 'सिक्का बदल गया' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

सिक्का बदल गया

❑ *कृष्णा सोबती*

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिये शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी। आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रखे और 'श्रीराम, श्रीराम' करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छींटे दिये और पानी से लिपट गयी।

चनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं। सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी। उछल-उछल आते पानी के भँवरों से टकराकर कगार गिर रहे थे। लेकिन दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी। शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाईं तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान थे। वह कुछ सहम-सी उठी।

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है! शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी और आज....

आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली में अकेली है। पर नहीं....... यह क्या सोच रही है वह सवेरे-सवेरे अब भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका। शाहनी ने लम्बी साँस ली और 'श्रीराम, श्रीराम' करती बाजरे के खेतों से होते घर की राह ली। कहीं-कहीं लिपे-पुते आँगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टन-टन बैलों की घंटियाँ बज उठती हैं। फिर भी.....फिर भी कुछ कुछ बँधा-बँधा-सा लग रहा है। शाहनी ने नजर उठायी। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भरायी नयी फसल को देखकर शाहनी किसी अचानक के मोह में भीग गयी। यह सब शाहनी की बरकतें हैं। दूर-दूर गाँवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएँ—सब अपने हैं। साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है। शाहनी कुएँ की ओर बढ़ी, आवाज दी—"शेरे-शेरे, हसैना-हसैना...."

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा! अपनी माँ जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ। उसने पास पड़ा गँड़ासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़कर बोला—"ऐ....... हसैना....सैना......"

शाहनी की आवाज उसे कैसे हिला गयी है। अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी को ऊँची हवेली की अंधेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की संदूकचियाँ उठाकर....कि तभी 'शेरे-शेरे.....' शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर चीखकर बोला—''ऐ मर गयीं ऐं—रब्ब तैनू मौत दे....'' हसैना आटे वाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहर निकल आयी—''ऐ आयी आँ... क्यों छाबेले (सुबह-सुबह) तड़पना एँ?''

अब तक शाहनी नजदीक पहुँच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली—''हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।''

''जिगरा!'' हसैना ने मानभरे स्वर में कहा—''शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँह-अँधेरे क्यों गालियाँ बरसायी हैं इसने?'' शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हँसकर बोली—''पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है! शेरे.....''

''हो शाहनी!''

''मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ?'' शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर घबराकर कहा—''नहीं...शाहनी!'' शेरे के उत्तर को अनसुनी कर शाहनी जरा चिन्तित स्वर से बोली—''जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर...'' शाहनी कहते-कहते रुक गयी। आज क्या हो रहा है? शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है..... शाहजी को बिछड़े कई साल बीत गये, पर .... पर आज कुछ पिघल रहा है..... शायद पिछली स्मृतियाँ... आँसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हल्के से हँस पड़ी और शेरा सोच ही रहा है—''क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहजी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह हो के रहेगा—क्यों न हो? हमारे ही भाई-बन्दों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आयी। गंडासे की याद हो आयी। शाहनी की ओर देखा—नहीं-नहीं, शेरा, इन पिछले दिनों में तीस-चालीस कत्ल कर चुका है। पर..... पर वह ऐसा नीच नहीं..... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गये। वह सर्दियों की रातें—कभी-कभी शाहजी की डाँट खा के वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए—'शेरे-शेरे, उठ पी ले।' शेरे ने शाहनी की झुर्रियाँ पड़े मुँह की ओर देखा तो शाहनी धीरे-धीरे से मुस्करा रही थी। शेरा विचलित हो गया। आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गयी, वह शाहनी को जरूर बचायेगा, लेकिन कल रात वाला मशविरा वह कैसे मान गया था। फिरोज की बात—''सब सामान बाँट लिया जायेगा।''

शाहनी की आवाज उसे कैसे हिला गयी है। अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी को ऊँची हवेली की अंधेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की संदूकचियाँ उठाकर....कि तभी 'शेरे-शेरे.....' शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर चीखकर बोला—''ऐ मर गयीं ऐं—रब्ब तैनू मौत दे....'' हसैना आटे वाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहर निकल आयी—''ऐ आयी आँ... क्यों छाबेले (सुबह-सुबह) तड़पना एँ?''

अब तक शाहनी नजदीक पहुँच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली—''हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।''

''जिगरा!'' हसैना ने मानभरे स्वर में कहा—''शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँह-अँधेरे क्यों गालियाँ बरसायी हैं इसने?'' शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हँसकर बोली—''पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है! शेरे.....''

''हो शाहनी!''

''मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ?'' शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर घबराकर कहा—''नहीं...शाहनी!'' शेरे के उत्तर को अनसुनी कर शाहनी जरा चिन्तित स्वर से बोली—''जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर...'' शाहनी कहते-कहते रुक गयी। आज क्या हो रहा है? शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है..... शाहजी को बिछड़े कई साल बीत गये, पर .... पर आज कुछ पिघल रहा है..... शायद पिछली स्मृतियाँ... आँसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हल्के से हँस पड़ी और शेरा सोच ही रहा है—''क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहजी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह हो के रहेगा—क्यों न हो? हमारे ही भाई-बन्दों से सूद ले-लेकर शाहजी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आयी। गंडासे की याद हो आयी। शाहनी की ओर देखा—नहीं-नहीं, शेरा, इन पिछले दिनों में तीस-चालीस कत्ल कर चुका है। पर..... पर वह ऐसा नीच नहीं..... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गये। वह सर्दियों की रातें—कभी-कभी शाहजी की डाँट खा के वह हवेली में पड़ा रहता था और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए—'शेरे-शेरे, उठ पी ले।' शेरे ने शाहनी की झुर्रियाँ पड़े मुँह की ओर देखा तो शाहनी धीरे-धीरे से मुस्करा रही थी। शेरा विचलित हो गया। आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गयी, वह शाहनी को जरूर बचायेगा, लेकिन कल रात वाला मशविरा वह कैसे मान गया था। फिरोज की बात—''सब कुछ ठीक हो जायेगा ..... सामान बाँट लिया जायेगा।''

"शाहनी, चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ।"

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मज़बूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

"शाहनी!"

"हाँ, शेरे?"

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे?

"शाहनी ....."

शाहनी ने सिर ऊंचा किया। आसमान धुएँ से भर गया था। "शेर..."

शेरा जानता है यह आग है। जबलपुर में आज आग लगनी थी, लग गयी। शाहनी कुछ न कह सकी। उसके नाते-रिश्ते सब वही हैं।

हवेली आ गयी। शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रखा। शेरा कब लौट गया, उसे कुछ पता नहीं, दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आयी और चली गयी हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही है। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है। शाहजी के घर की मालकिन .... लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा है मानो पत्थर हो गयी हो। पड़े-पड़े शाम हो गयी; पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही है। अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी।

"शाहनी-शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं लेने?"

"ट्रकें....?" शाहनी इसके सिवाय और कुछ न कह सकी। हाथों ने एक-दूसरे को थाम लिया। बात-की-बात में खबर गाँव भर में फैल गयी। बीवी ने अपने विकृत कण्ठ से कहा—"शाहनी, आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया, अँधेर पड़ गया।"

शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। नवाब बीवी ने स्नेह-सनी उदासी से कहा—"शाहनी, हमने कभी न सोचा था।"

शाहनी क्या कहे कि उसी ने ऐसा कब सोचा था? नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनायी दी, शाहनी समझी कि वक्त आ पहुँचा। मशीन की तरह नीचे उतरी, पर ड्योढ़ी न लाँघ सकी। किसी गहरी, बहुत गहरी आवाज से पूछा—"कौन है वहाँ?"

कौन नहीं है आज वहाँ? सारा गाँव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी उसकी असामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज

उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है? यह भीड़ की भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझा गयी थी?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा? शाहनी के निकट आ खड़े हुए। बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा। धीरे से जरा गला साफ करते हुए कहा—''शाहनी, रब्ब नु एही मंजूर सी।''

''शाहनी के कदम डोल गये। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गयी। इसी दिन के लिए छोड़ गये थे शाहजी उसे? बेजान-सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है, क्या गुजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है सिक्का बदल गया है....''

शाहनी का घर से निकलना छोटी-सी बात नहीं। गाँव-का-गाँव खड़ा है, हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक, जिसे शाहनी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। तब से लेकर आज तक सब फैसले, सब मशविरे यहाँ होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गयी थी।

यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं जाना। किसी का बुरा नहीं किया। लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है।....

देर हो रही थी, दाऊद खाँ जरा अकड़कर आगे आया और ड्योढ़ी पर खड़ी निर्जीव छाया को देखकर ठिठक गया। वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे.... यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मँगेतर को सोने के कर्नफूल दिये थे मुँह दिखायी में। अभी उसी दिन वह जब 'लीग' के सिलसिले में आया था तो उसने उद्दंडता से कहा था—''शाहनी, भागोवाल मसीत बनेगी। तीन सौ रुपया देना पड़ेगा।'' शाहनी ने अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपया आगे रख दिये थे। और आज....?

''शाहनी!'' दाऊद खाँ ने आवाज दी। वह थानेदार है, नहीं तो उसका स्वर शायद आँखों में उतर आता।

शाहनी गुमसुम, कुछ न बोल पायौ।

''शाहनी!'' ड्योढ़ी के निकट जाकर बोला—''देर हो रही हैं शाहनी (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया है? सोना-चाँदी...'' शाहनी अस्फुट स्वर में बोली—''सोना-चाँदी!'' जरा ठहरकर सादगी से कहा—''सोना-चाँदी बच्चा, वह सब कुछ तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।''

दाऊद खाँ लज्जित-सा हो गया—''शाहनी, तुम अकेली हो। अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं।''

''वक्त'', शाहनी अपनी गोली आँखों से हँस पड़ी-''दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त

देखने के लिए क्या मैं जिन्दा रहूँगी।'' किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खाँ निरुत्तर है। साहस कर बोला—''शाहनी, कुछ नकदी जरूरी है।''

''नहीं बच्चा, मुझे इस घर से..... '' शाहनी का गला रुंध गया—''नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी, यहीं रहेगी।''

शेरा पास आ खड़ा हुआ। दूर खड़े-खड़े उसने दाऊद खाँ को शाहनी के पास देखा तो शक गुजरा कि हो-न-हो कुछ मार रहा हो शाहनी से।

''खाँ साहब, देर हो रही है.....''

शाहनी चौंक पड़ी। देर .... मेरे घर में मुझे देर! आँसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पते हुए..... नहीं, यह सब कुछ नहीं, ठीक है... देर हो रही है। शाहनी के जैसे कानों में यही गूँज रहा है—देर हो रही है .... पर नहीं, रो-रोकर नहीं शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से। मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन बहूरानी बनकर आ खड़ी हुई थी।

अपने लड़खड़ाते कदमों को सम्भालकर शाहनी ने दुपट्टे से आँखें पोंछी और ड्योढ़ी से बाहर हो गयी। बड़ी बूढ़ियाँ रो पड़ीं। उनके दुःख-सुख की साथिन आज इस घर से निकल पड़ी है। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ। खुदा ने सब कुछ दिया था, मगर दिन बदले, वक्त बदले....

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढाँपकर धुंधली आँखों से हवेली को अन्तिम बार देखा। उसने दोनों हाथ जोड़ लिये—यही अन्तिम दर्शन था, अन्तिम प्रणाम था। शाहनी ने जोर मारा.... सोचा, एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आऊँ मैं? ज़ी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है। बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूँदें चू पड़ीं। शाहनी चल दी—ऊँचा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खाँ, शेरा, पटवारी, जैलदार और छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, मर्द औरतें सब पीछे-पीछे।

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी। गाँव वालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेर का दिल टूट रहा है। दाऊद खाँ ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज़ से कहा-''शाहनी, कुछ कह जाओ, तुम्हारे मुँह से निकली असीम झूठ नहीं हो सकती।'' और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुँधे-रुँधे गले से कहा—''रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियाँ बख्शे...!''

वह छोटा-सा जन-समूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम.... हम शाहनी को नहीं रख सके शेरे ने बढ़कर शाहनी के पाँव हुए—''शाहनी कोई कुछ नहीं कर सका। राज भी पलट गया....'' शाहनी ने काँपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रक्खा और

रुक-रुककर कहा—"तैनू भाग जगण चन्ना।" (ओ चाँद, तेरे भाग्य जागें) दाऊद खाँ ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी-बूढ़ियाँ शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी।

अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नयी बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में। कुछ पता नहीं—ट्रक चल रहा है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही हैं, दाऊद खाँ विचलित होकर देख रहा है इस बड़ी शाहनी को। कहाँ जायेगी अब वह?

"शाहनी, मन में मैल न लाना कुछ कर सकते तो उठा न रखते वक्त ही ऐसा है। कुछ कर सकते राज पलट गया है। सिक्का बदल गया है...." रात को शाहनी जब कैम्प में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा—'राज पलट गया है..... सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी...."

और शाहनी की आँखें और भी गीली हो गयीं।

आसपास के हरे-भरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी।

शायद राज भी पलटा खा रहा था और... सिक्का बदल रहा था....

❑

तिरिछ

❑ उदय प्रकाश

इस घटना का संबंध पिताजी से है। मेरे सपने से है और शहर से भी है। शहर के प्रति जो एक जन्म-जात भय होता है, उससे भी है।

पिताजी तब पचपन साल के हुए थे। दुबला शरीर। बाल बिल्कुल मक्के के भुए जैसे सफेद। सिर पर जैसे रुई रखी हो। वे सोचते ज्यादा थे—बोलते बहुत कम। जब बोलते तो हमें राहत मिलती, जैसे देर से रुकी हुई साँस निकल रही हो। साथ-साथ हमें डर भी लगता। हम बच्चों के लिए वे एक बहुत बड़ा रहस्य थे। हमें पता था कि संसार के सारे ज्ञान की तिजोरी उनके पास है। हम जानते थे कि संसार की सारी भाषाएँ वे बोल सकते हैं। दुनिया उनको जानती है और हमारी तरह ही उनसे डरती हुई उनका सम्मान करती है।

हमें उनकी संतान होने का गर्व था।

कभी-कभी, वैसे ऐसा सालों में एकाध बार ही होता, वे शाम को हमें अपने साथ टहलाने कहीं बाहर ले जाते। चलने से पहले वे मुँह में तंबाकू भर लेते। तंबाकू के कारण वे कुछ बोल नहीं पाते थे। वे चुप रहते। यह चुप्पी हमें बहुत गंभीर, गौरवशाली, आश्चर्यजनक और भारी-भरकम लगती। छोटी बहन कभी उनसे रास्ते में कुछ पूछना चाहती तो फौरन मैं उसका जवाब देने की कोशिश करता, जिससे पिताजी को न बोलना पड़े।

वैसे यह काम काफी मुश्किल और जोखिम भरा होता। क्योंकि मैं जानता था कि अगर मेरा जवाब गलत हुआ तो पिताजी को बोलना पड़ जाएगा। बोलने में उन्हें परेशानी होती थी। एक तो उन्हें तंबाकू की पीक निकालनी पड़ती थी, फिर जिस दुनिया में वे रहते थे, वहाँ से निकलकर यहाँ तक आने में उन्हें एक कठिन दूरी तय करनी पड़ती थी। वैसे बहन के सवालों में कोई खास बात होती नहीं थी। जैसे वह यही पूछ लेती कि सामने छिउले की सूखी टहनी पर बैठी उस चिड़िया को क्या कहते हैं? मैं चूँकि सारी चिड़ियों को जानता था इसलिए बता सकता था कि वह नीलकंठ है और दशहरे के दिन से जरूर देखना चाहिए। मेरी पूरी कोशिश रहती कि पिताजी को आराम रहे और वे सोचते रहें।

मेरी और माँ की, दोनों की पूरी कोशिश रहती कि पिताजी अपनी दुनिया में सुख-चैन से रहें। वहाँ से उन्हें जबरन बाहर न निकाला जाए। वह दुनिया हमारे लिए बहुत रहस्यपूर्ण थी, लेकिन हमारे घर की और हमारे जीवन की बहुत-सी समस्याओं का अंत

पिताजी वहीं रहते हुए करते थे। जैसे जब मेरी फीस की बात आई, उस समय हमारे पास का आखिरी गिलास भी गुम गया था और सब लोग लोटे में पानी पीते थे। पिताजी दो दिन तक बिल्कुल चुप रहे। माँ को भी शक हुआ था कि पिताजी फीस की बात बिल्कुल भूल गए हैं या फिर इसका हल उनके वश की बात नहीं है। लेकिन तीसरे दिन, सुबह-सुबह, पिताजी ने मुझे एक पत्र लिफाफे में रखकर दिया और शहर के डॉक्टर पंत के पास भेजा। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ जब डॉक्टर ने मुझे शरबत पिलाई, घर के भीतर ले जाकर अपने बेटे से परिचय कराया और सौ-सौ के तीन नोट मुझे दिए।

हम पिताजी पर गर्व करते थे, प्यार करते थे, उनसे डरते थे और उनके होने का अहसास ऐसा था जैसे हम किसी किले में रह रहे हों। ऐसा किला, जिसके चारों ओर गहरी नहरें खुदी हुई हों, बुर्जें बहुत ऊँची हों, दीवारें सख्त लाल चट्टानों की बनी हुई हों और हर बाहरी हमले के सामने हमारा किला अभेद्य हो।

पिताजी एक खूब मजबूत किला थे। उनके परकोटे पर हम सब कुछ भूलकर खेलते थे, दौड़ते थे। और, रात में खूब गहरी नींद मुझे आती थी।

लेकिन उस दिन शाम को, जब पिताजी बाहर से टहलकर आए तो उनके टखने में पट्टी बँधी थी। थोड़ी देर में गाँव के कई लोग वहाँ आ गए। पता चला कि पिताजी को जंगल में तिरिछ (विषखापर, एक जहरीला लिजार्ड) ने काट लिया है।

हम सब जानते थे कि तिरिछ के काटने पर आदमी बच ही नहीं सकता। रात में, लालटेन की धुँधली-मटैली रोशनी में गाँव के बहुत से लोग हमारे आँगन में जमा हो गए थे। पिताजी उनके बीच थे, जमीन पर बैठे हुए। फिर पास के गाँव का चुटुआ नाई भी आया। वह अरंड के पते और कंडे की राख से जहर उतारता था।

तिरिछ एक बार मैंने देखा था।

तालाब के किनारे जो बड़ी-बड़ी चट्टानों के ढेर थे, और जो दोपहर में खूब गर्म हो जाते थे, उनमें से किसी चट्टान की दरार से निकलकर वह पानी पीने तालाब की ओर जा रहा था।

मेरे साथ थानू था। उसने बतलाया कि वह तिरिछ है, काले नाग से सौ गुना ज्यादा उसमें जहर होता है। उसी ने बताया कि साँप तो तब काटता है, जब उसके ऊपर पैर पड़ जाए या कोई जब जबरदस्ती उसे तंग करे। लेकिन तिरिछ तो नजर मिलते ही दौड़ता है। पीछे पड़ जाता है। उससे बचने के लिए कभी सीधे नहीं भागना चाहिए। टेढ़ा-मेढ़ा, चक्कर काटते हुए, गोल-मोल दौड़ना चाहिए।

दरअसल जब आदमी भागता है तो जमीन पर वह सिर्फ अपने पैरों के निशान ही नहीं छोड़ता, बल्कि हर निशान के साथ, वहाँ की धूल में, अपनी गंध भी छोड़ जाता है। तिरिछ इसी गंध के सहारे दौड़ता है। थानू ने बतलाया कि तिरिछ को चकमा देने के लिए आदमी को यह करना चाहिए कि पहले तो वह बिल्कुल पास-पास कदम रखकर, जल्दी-जल्दी

कुछ दूर दौड़े फिर चार-पाँच बार खूब लंबी-लंबी छलाँग दे। तिरिछ सूँघता हुआ वहाँ आएगा, जहाँ पास-पास पैर के निशान होंगे, वहाँ उसकी रफ्तार खूब तेज हो जाएगी—और जहाँ से आदमी ने छलाँग मारी होगी, वहाँ आकर वह उलझन में पड़ जाएगा। वह इधर-उधर तब तक भटकता रहेगा जब तक उसे अगले पैर का निशान और उसमें बसी गंध नहीं मिल जाती।

हमें तिरिछ के बारे में दो बातें और पता थीं। एक तो यह कि जैसे ही वह आदमी को काटता है, वैसे ही वह वहाँ से भागकर किसी जगह पेशाब करता है और उस पेशाब में लोट जाता है। अगर तिरिछ ने ऐसा कर लिया तो आदमी बच नहीं सकता। अगर उसे बचना है तो तिरिछ के पेशाब में लौटने के पहले ही, खुद किसी नदी, कुएँ या तालाब में डुबकी लगा लेनी चाहिए या फिर तिरिछ के ऐसा करने के पहले ही उसे मार देना चाहिए।

दूसरी बात यह कि तिरिछ काटने के लिए तभी दौड़ता है, जब उससे नजर टकरा जाए। अगर तिरिछ को देखो तो उससे कभी आँख मत मिलाओ। आँख मिलते ही वह आदमी की गंध पहचान लेता है और फिर पीछे लग जाता है। फिर तो आदमी चाहे पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा ले, तिरिछ पीछे-पीछे आता है।

मैं भी तमाम बच्चों की तरह उस समय तिरिछ से बहुत डरता था। मेरे दुःस्वप्न के सबसे खतरनाक पात्र दो ही थे—एक हाथी और दूसरा तिरिछ। हाथी तो फिर भी दौड़ता-दौड़ता थक जाता था और मैं पेड़ पर चढ़कर बच जाता था, या फिर उड़ने लगता था, लेकिन तिरिछ—उसके सामने तो मैं किसी इंद्रजाल में बँध जाता था। मैं सपने में कहीं जा रहा होता तो अचानक ही किसी जगह वह मिल जाता, उसकी जगह तय नहीं होती थी। कोई जरूरी नहीं था कि वह चट्टानों की दरार में, पुरानी इमारतों के पिछवाड़े या किसी झाड़ी के पास दिखे—वह मुझे बाजार में, सिनेमा हाल में, किसी दुकान या मेरे कमरे में ही दिख सकता था।

मैं सपने में कोशिश करता कि उससे नजर न मिलने पाए, लेकिन वह इतनी परिचित आँखों से मुझे देखता कि मैं अपने-आपको रोक नहीं पाता था और बस, आँख मिलते ही उसकी नजर बदल जाती थी—वह दौड़ता था और मैं भागता था। मैं गोल-गोल चक्कर लगाता, जल्दी-जल्दी पास-पास डग भरकर अचानक खूब लंबी-लंबी छलाँगें लगाने लगता, उड़ने की कोशिश करता, किसी ऊँची जगह पर चढ़ जाता, लेकिन मेरी हजार कोशिशों के बावजूद वह चकमा नहीं खाता था। वह मुझे बहुत घाघ, समझदार, चतुर और खतरनाक लगता। मुझे लगता कि वह मुझे खूब अच्छी तरह से जानता है। उसकी आँखों में मेरे लिए परिचय की जो चमक थी, उससे मुझे लगता कि वह मेरा ऐसा शत्रु है जिसे मेरे दिमाग में आनेवाले हर विचार के बारे में पता है।

मेरा सबसे खौफनाक, यातनादायक, भयाक्रांत और बेचैनी से भरा यही सपना था। भागते-भागते मेरा पूरा शरीर थक जाता, फेफड़े फूल जाते, मैं पसीने में लथ-पथ होकर

बेदम होने लगता और एक बहुत ही डरावनी, सुन्न कर डालनेवाली मृत्यु मेरे बिल्कुल करीब आने लगती। मैं जोरों से चीखता, रोने लगता। पिताजी को, थानू को या माँ को पुकारता और फिर मैं जान जाता कि यह सपना है। लेकिन यह पता चल जाने के बावजूद मैं अच्छी तरह से जानता कि तब भी मैं अपनी इस मृत्यु से नहीं बच सकता। मृत्यु नहीं—तिरिछ द्वारा अपनी हत्या से—और ऐसे में मैं सपने में ही कोशिश करता कि किसी तरह मैं जाग जाऊँ। मैं पूरी ताकत लगाता, सपने के भीतर आँखें खोलकर फाड़ता, रोशनी को देखने की कोशिश करता और जोर से कुछ बोलता। कई बार बिल्कुल ऐन मौके पर मैं जागने में सफल भी हो जाता।

माँ बतलाती कि मुझे सपने में बोलने और चीखने की आदत है। कई बार उन्होंने मुझे नींद में रोते हुए भी देखा था। ऐसे में उन्हें मुझे जगा डालना चाहिए, लेकिन वे मेरे माथे को सहला कर मुझे रजाई से ढक देती थीं और मैं उसी खौफनाक दुनिया में अकेला छोड़ दिया जाता था। अपनी मृत्यु—बल्कि अपनी हत्या से बचने की कमजोर कोशिश में भागता, दौड़ता चीखता।

वैसे, धीरे-धीरे मैंने अनुभवों से यह जान लिया था कि आवाज ही ऐसे मौके पर मेरा सबसे बड़ा अस्त्र है, जिससे मैं तिरिछ से बच सकता था। लेकिन दुर्भाग्य से, हर बार, इस अस्त्र की याद मुझे बिल्कुल अंतिम समय पर आती थी। तब, जब वह मुझे बिल्कुल पा लेनेवाला होता। अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगतीं, मौत के नशे से भरे एक निर्जीव लेकिन डरावने अँधेरे में मैं घिर जाता, लगता मेरे नीचे कोई ठोस आधार नहीं हैमैं हवा में हूँ और वह पल आ जाता, जब मेरे जीवन का अंत होनेवाला होता। तभी, बिल्कुल इसी एक बहुत ही छोटे और नाजुक पल में मुझे अपने इस अस्त्र की याद आती और मैं जोर-जोर से बोलने लगता और इस आवाज के सहारे मैं सपने से बाहर निकल आता। मैं जाग जाता।

कई बार माँ मुझसे पूछतीं भी कि मुझे क्या हो गया था। तब मेरे पास इतनी भाषा नहीं थी कि मैं उन्हें सब कुछ, एक-एक चीज उसी तरह बता पाता। अपनी इस असमर्थता के बारे में मुझे खूब पता था और इसी वजह से मैं एक अजीब-से तनाव, बेचैनी और असहायता से भर जाता। अंत में हारकर इतना ही कह पाता कि "बहुत डरावना सपना था।"

जाने क्यों मुझे शक था कि पिताजी को उसी तिरिछ ने काटा था, जिसे मैं पहचानता था और जो मेरे सपने में आता था।

लेकिन एक अच्छी बात यह हुई थी कि जैसे ही वह तिरिछ पिताजी को काटकर भागा, पिताजी ने उसका पीछा करके उसे मार डाला था। तय था कि अगर वे फौरन उसे नहीं मार पाते तो वह पेशाब करके उसमें जरूर लौट जाता। फिर पिताजी किसी हाल में न बचते। यही वजह थी कि पिताजी को लेकर मुझे उतनी चिंता नहीं रह गई थी। बल्कि एक तरह की राहत और मुक्ति की खुशी मेरे भीतर धीरे-धीरे पैदा हो रही थी। कारण, एक तो यही

कि पिताजी ने तिरिछ को तुरंत मार डाला था और दूसरा यह कि मेरा सबसे खतरनाक, पुराना परिचित शत्रु आखिरकार मर चुका था। उसकी हत्या हो गया था और अब मैं अपने सपने के भीतर, कहीं भी, बिना किसी डर के, सीटी बजाता घूम सकता था।

उस रात देर तक हमारे आँगन में भीड़ रही आयी। पिताजी की झाड़फूंक चलती रही। काटे के ज म को चीर कर खून भी बाहर निकाला गया और कुएँ में डालनेवाली लाल दवा (पोटेशियम परमैंगनेट) घाव में भरा गया। मैं निश्चिंत था।

अगली सुबह पिताजी को शहर जाना था। अदालत में पेशी थी। उनके नाम स मन आया था। हमारे गाँव से लगभग दो किलोमीटर दूर से निकलने वाली सड़क से शहर के लिए बसें गुजरती थीं। उनकी संख्या दिन भर में मुश्किल से दो या तीन थी। गनीमत थी कि पिताजी जैसे ही सड़क तक पहुँचे, शहर जानेवाला पास के गाँव का एक ट्रैक्टर उन्हें मिल गया। ट्रैक्टर में बैठे हुए लोग पहचान के थे। ट्रैक्टर दो-ढाई घंटे में शहर पहुंच जानेवाला था। यानी अदालत खुलने से काफी पहले।

रास्ते में तिरिछ वाली बात चली। पिताजी ने अपना टखना उन लोगों को दिखलाया। ट्रैक्टर में पंडित राम औतार भी थे। उन्होंने बतलाया कि तिरिछ के जहर की एक खासियत यह भी है कि कभी-कभी यह चौबीस घंटे बाद, ठीक उसी वक्त, जिस वक्त पिछले दिन तिरिछ काटता है, अपना असर दिखाता है। इसलिए अभी पिताजी को निश्चिंत नहीं होना चाहिए। ट्रैक्टर के लोगों ने पिताजी का ध्यान एक और बड़ी गलती की ओर खींचा। उनका कहना था कि यह तो पिताजी ने बहुत ठीक किया कि तिरिछ को फौरन मार डाला, लेकिन इसके बाद भी तिरिछ को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए था। उसे कम-से-कम जला जरूर देना चाहिए था।

उन लोगो का कहना था कि बहुत-से कीड़े-मकोड़े और जीव-जंतु रात में चंद्रमा की रोशनी में दुबारा जी उठते हैं। चाँदनी में जो ओस और शीत होती है उसमें अमृत होता है और कई बार ऐसा देखा गया है कि जिस साँप को मरा हुआ समझकर रात में यों ही फेंक दिया जाता है, उसका शरीर चाँद की शीत में भीग कर दुबारा जी उठता है और वह भाग जाता है। फिर वह हमेशा बदला लेने की ताक में रहता है।

ट्रैक्टर के लोगों को शक था कि कहीं ऐसा न हो कि रात में जी उठने के बाद तिरिछ पेशाव करके उसमें लोट जाए। ऐसा हुआ तो चौबीस घंटे बीतते-बीतते, ठीक उसी घड़ी के आने पर, तिरिछ का जानलेवा जहर पिताजी पर चढ़ना शुरू हो जाएगा। उन लोगों ने सलाह भी दी कि पिताजी को वहीं से वापस लौट जाना चाहिए और अगर संयोग से, उस तिरिछ की लाश उसी जगह पड़ी हुई हो, तो उसे अच्छी तरह जलाकर राख कर देना चाहिए। लेकिन पिताजी ने उन्हें बताया कि पेशी कितनी जरूरी थी। यह तीसरा स मन थी। और अगर इस बार भी वे अदालत में हाजिर न हुए तो गैर-जमानती वारंट निकलने का डर था। पेशी भी हमारे उसी मकान को लेकर थी, जिसमें हमारा परिवार रह रहा था। वकील को

पिछले दो बार की पेशी में फीस भी नहीं दी जा सकी थी और कहीं अगर उसने लापरवाही दिखला दी और जज सनक गया तो वह हमारी कुड़की-डिग्री भी करवा सकता था।

विचित्र स्थिति थी कि अगर पिताजी उस तिरिछ की लाश को जलाने के लिए ट्रैक्टर से उतरकर, वहीं से, गाँव लौट आते तो गैरजमानती वारंट के तहत वे गिरफ्तार कर लिए जाते और हमारा घर हमसे छिन जाता। अदालत हमारे खिलाफ हो जाती।

लेकिन पंडित राम औतार एक वैद्य भी थे। ज्योतिष पंचांग के अलावा उन्हें जड़ीबूटियों की भी बड़ी गहरी जानकारी थी। उन्होंने सुझाया कि एक तरीका ऐसा है, जिससे पिताजी पेशी में हाजिर भी हो सकते हैं और तिरिछ के जहर से चौबीस घंटे के बाद बच भी सकते हैं। उन्होंने बताया कि चरक का निचोड़ इस सूत्र में है कि विष ही विष की औषधि होता है। अगर धतूरे के बीज कहीं मिल जाएँ तो वह तिरिछ के जहर की काट तैयार कर सकते हैं।

अगले गाँव सामतपुर में ट्रैक्टर रोक दिया गया और एक तेली के खेत में धतूरे के पौधे आखिरकार खोज निकाले गए। धतूरे के बीजों को पीसकर उसे ताँबे के पुराने सिक्के के साथ उबालकर काढ़ा तैयार किया गया। काढ़ा बहुत कड़वा था इसलिए उसे चाय में मिलाया गया और पिताजी को वह चाय पिला दी गई। इसके बाद सभी निश्चिंत हो गए। एक बहुत बड़े खतरे से पिताजी को निकालने की कोशिश हो रही थी।

वैसे मुझे तिरिछ के बारे में तीसरी बात भी पता थी, जो पिताजी के जाने के कई घंटे बाद अचानक याद आ गई थी। यह बात साँप की उस बात से मिलती-जुलती थी, जिसके फलस्वरूप आगे चलकर कैमरे का आविष्कार हुआ था।

माना यह जाता था कि अगर कोई आदमी साँप को मार रहा हो तो अपने मरने से पहले वह साँप, अंतिम बार, अपने हत्यारे के चेहरे को पूरी तरह से, बहुत गौर से देखता है। आदमी उसकी हत्या कर रहा होता है और साँप टकटकी बाँधकर उस आदमी के चेहरे की एक-एक बारीकी को अपनी आँख के भीतरी पर्दे में दर्ज कर रहा होता है। साँप की मृत्यु के बाद साँप की आँख के भीतरी पर्दे पर उस आदमी का चित्र स्पष्ट दर्ज हो जाता है।

बाद में, आदमी के जाने के बाद, उस साँप का दूसरा जोड़ा जाकर उस मरे हुए साँप की आँख के भीतर झाँकता है और इस तरह वह हत्यारा पहचान लिया जाता है। सारे साँप उसे पहचानने लगते हैं। फिर वह कहीं भी चला जाए, उससे बदला लेने की फिराक में वे रहते हैं। हर साँप उसका शत्रु होता है।

मुझे शक था कि मरे हुए तिरिछ की आँख के भीतरी पर्दे पर पिताजी का चेहरा दर्ज होगा। कोई दूसरा तिरिछ आकर उस लाश की आँख में से झाँकेगा और पिताजी वहाँ पहचान लिए जाएँगे। मेरे भीतर इस बात को लेकर बेचैनी पैदा हुई कि पिताजी ने यह सतर्कता क्यों नहीं बरती? उन्हें तिरिछ को मारने के साथ ही किसी पत्थर से उसकी दोनों आँखों को

कुचलकर फोड़ देना चाहिए था। लेकिन अब क्या हो सकता था? पिताजी शहर जा चुके थे और मेरे सामने उलझन और चुनौती थी कि गाँव के पास फैले इतने बड़े जंगल में जिस जगह तिरिछ को मारकर उन्होंने छोड़ा था, वह जगह मैं खोज निकालूं।

मैं थानू के साथ बोतल में मिट्टी का तेल, दियासलाई और डंडा लेकर जंगल में तिरिछ की खोज में भटकता रहा। मैं उसे अच्छी तरह से पहचानता था। बहुत अच्छी तरह। थानू निराश था।

फिर, मुझे अचानक ही लगने लगा कि इस जंगल को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। एक-एक पेड़ मेरा परिचित निकलने लगा। इसी जगह से कई बार सपने में मैं तिरिछ से बचने के लिए भागा था। मैंने गौर से हर तरफ देखा—बिल्कुल यही वह जगह थी। मैंने थानू को बताया कि एक सँकरा-सा नाला इस जगह से कितनी दूर दक्षिण की तरफ बहता है। नाले के ऊपर जहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं, वहाँ कीकर का एक बहुत पुराना पेड़ है, जिस पर बड़े-बड़े शहद के छत्ते हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वे कई शताब्दियों पुराने हैं। मैं उस भूरे रंग की चट्टान को जानता था, जो बरसात भर नाले के पानी में आधी डूबी रहती थी और बारिश के बीतने के बाद जब बाहर निकलती थी तो उसकी खोहों में कीचड़ भर जाती थी और अजीब-अजीब वनस्पतियाँ वहाँ से उग आती थीं। चट्टान के ऊपर हरी काई की एक पर्त-सी जम जाती थी। इसी चट्टान की सबसे ऊपरवाली दरार में तिरिछ रहता था। थानू। इस बात को मेरी कल्पना मान रहा था।

लेकिन बहुत जल्द हमें वह नाला मिल गया। कीकर का वह बूढ़ा पेड़ भी, जिस पर शहद के छत्ते थे, और वह चट्टान भी। तिरिछ की लाश चट्टान से जरा हटकर, जमीन पर, घास के ऊपर चित्त पड़ी हुई थी। बिल्कुल यह वही तिरिछ था। मेरे भीतर हिंसा और उतेजना और खुशी की एक सनसनी दौड़ रही थी।

थानू ने और मैंने सूखे पते और लकड़ियाँ इकट्ठी कीं, खूब सारा मिट्टी का तेल उसमें डाला और आग लगा दी। तिरिछ उसमें जल रहा था। उसके जलने की चिरायंध गंध हवा में फैल रही थी। मेरा मन जोर से चिल्लाने को हुआ लेकिन मैं डरा कि कहीं मैं जाग न जाऊँ और यह सब कुछ सपना न साबित हो जाए। मैंने थानू की ओर देखा। वह रो रहा था। वह मेरा बहुत अच्छा दोस्त था।

मेरे सपने में इसी जगह से निकलकर उस तिरिछ ने कई बार मेरा पीछा करना शुरू किया था। आश्चर्य था कि इतने लंबे अर्से से उसके अड्डे को इतनी अच्छी तरह से जानने के बावजूद कभी दिन में आकर मैंने उसे मारने की कोई कोशिश नहीं की थी।

मैं आज बेतहाश खुश था।

पंडित राम औतार ने बतलाया था कि ट्रैक्टर ने पौने दस बजे के लगभग शहर का चुंगीनाका पार किया था। वहाँ उन्हें नाके का टोल टैक्स चुकाने के लिए कुछ देर रुकना भी पड़ा था। वहाँ पर पिताजी ट्रैक्टर से उतरकर पेशाब करने गए थे। लौटने पर उन्होंने

बताया था कि उनका सिर कुछ घूम-सा रहा है, तब तक पिताजी को धतूरे का काढ़ा पिए हुए तकरीबन डेढ़ घंटा हो चुका था। ट्रैक्टर ने पिताजी को शहर में दस बजकर पाँच-सात मिनट के आसपास छोड़ दिया था। ट्रैक्टर में ही बैठे पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब शहर में, मिनर्वा टाकीज के पासवाले चौराहे पर पिताजी को ट्रैक्टर से उतारा गया, तब उन्होंने शिकायत की थी कि उनका गला कुछ सूख-सा रहा है। वे थोड़ा परेशान भी थे क्योंकि अदालत जाने का रास्ता उन्हें मालूम नहीं था और शहर के लोगों से पूछ-पूछकर कहीं जाने में उन्हें बहुत तकलीफ होती थी।

पिताजी के साथ एक दिक्कत यह भी थी कि गाँव या जंगल की पगडंडियाँ तो उन्हें याद रहती थीं, शहर की सड़कों को वे भूल जाते थे। शहर वे बहुत कम जाते थे। जाना ही पड़े तो अंतिम समय तक वे टालते रहते थे, तब तक, जब तक जाना बिल्कुल ही जरूरी न हो जाए। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि पिताजी सारा सामान लेकर शहर के लिए रवाना हुए और बस अड़े से लौट आए। बहाना यह कि बस छूट गई। जब कि हम सब जानते थे कि ऐसा नहीं हुआ होगा। पिताजी ने बस को देखा होगा, फिर वे कहीं बैठ गए होंगेपेशाब करने या पान खाने। फिर उन्होंने दखा होगा कि बस छूट रही है। उन्होंने जरा-सा और इंतजार किया होगा। जब बस ने र तार पकड़ ली होगीतब वे कुछ दूर तक दौड़े होंगे। फिर उनके कदम धीमे पड़ गए होंगे और अफसोस और गुस्सा प्रकट करते वे लौट आए होंगे। ऐसा करते हुए उन्हें स्वयं भी लगा होगा कि बस सचमुच छूट गई है। ऐसे में, जबकि हम मान चुके होते कि वे शहर जा चुके हैं, वह लौटकर हमें चकित कर देते।

ट्रैक्टर से मिनर्वा टाकीज के पास वाले चौराहे पर, सिंध वाच कंपनी के ठीक सामने लगभग दस बज कर सात मिनट पर उतरने के बाद से लेकर शाम छह बजे तक पिताजी के साथ शहर में जो कुछ भी हुआ, उसका सिर्फ एक धुँधला-सा अनुमान ही लगाया जा सकता है। यह जानकारी भी कुछ लोगों से बातचीत और पूछताछ के बाद मिली है। किसी की भी मृत्यु के बाद, अगर वह मृत्यु बहुत आकस्मिक और अस्वाभाविक ढंग से हुई हो, ऐसी जानकारियाँ मिल ही जाती है। उस दिन, बुधवार 17 मई, 1972 को सुबह दस-दस से लेकर शाम छह बजे तक, लगभग पौने आठ घंटे में पिताजी कहाँ-कहाँ गए, कहाँ-कहाँ उनके साथ क्या-क्या हुआ, इसका बहुत सही और विस्तृत ब्यौरा तो मिलना मुश्किल है। जो सूचनाएँ या जानकारियाँ बाद में मिली, उनके जरिए उन घटनाओं का सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है।

जैसा कि पलड़ा गाँव के मास्टर नंदलाल का कहना था कि जब पिताजी ट्रैक्टर से उतरे, तभी उन्होंने गला सूखने की शिकायत की थी। इसके पहले चुंगीनाका के पास, जब पेशाब करके पिताजी लौटे थे तो उन्होंने सिर घूमने की बात की थी। यानी पिताजी पर धतूरे के बीजों के काढ़े का असर होना शुरू हो गया था। वैसे भी शहर पहुँचने तक पिताजी को काढ़ा पिए हुए लगभग दो घंटे हो चुके थे। मेरा अनुमान है कि उस समय पिताजी को प्यास बहुत लगी होगी। गला भिगाने के लिए वे किसी होटल या ढाबे की तरफ गए भी होंगे,

लेकिन जैसा कि मुझे उनके स्वभाव के बारे में पता है, वे वहाँ कुछ देर खड़े रहे होंगे, और फिर एक गिलास पानी माँगने का फैसला न कर सके होंगे। एक बार उन्होंने बताया भी था कि कुछ साल पहले गर्मियों के दिनों में जब उन्होंने किसी होटल में पानी माँगा था, तो वहाँ काम करनेवाले नौकर ने उन्हें गाली दी थी। पिताजी बहुत संवेदनशील थे, इसलिए उन्होंने अपनी प्यास को दबाया होगा और वे वहाँ से चल पड़े होंगे।

सवा दस से लेकर लगभग ग्यारह बजे के बीच, पैंतालीस मिनट तक पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसकी कोई जानकारी कहीं से नहीं मिलती। इस बीच ऐसी कोई खास घटना भी नहीं हुई, जिससे कोई कुछ कह सके। फिर शहर में सड़क पर आते-जाते लोगों में से किसी ने उन पर ध्यान दिया हो, उन्हें देखा हो, इसका पता लगाना भी मुश्किल है। वैसे मेरा अपना अंदाजा है कि इस बीच पिताजी ने कुछ लोगों से अदालत जाने का रास्ता पूछा होगा और उनके दिमाग में यह बात भी रही होगी कि वहाँ पहुँचकर वे अपने वकील एस.एन. अग्रवाल से पानी माँग लेंगे। लेकिन उनके पूछने पर या तो लोग चुप रह कर तेजी से आगे बढ़ गए होंगे या किसी ने इतनी बौखलाहट और जल्दबाजी में उन्हें कुछ बताया होगा, जो पिताजी ठीक से समझ नहीं सके होंगे और सिर्फ अपमानित, दुःखी और परेशान होकर रह गए होंगे। शहर में ऐसा होता ही है।

वैसे बीच के पौन घंटे के बारे में मेरा अपना अनुमान है कि इस बीच पिताजी पर काढ़े का असर काफी बढ़ गया होगा। मई की धूप और प्यास ने इस असर को और भी तेज, और भी गहरा कर दिया होगा। उनके पैर लड़खड़ाने भी लगे होंगे और बहुत संभव है कि एकाध बार, इस बीच, उन्हें चक्कर भी आ गए हों।

पिताजी ग्यारह बजे, शहर में, देशबंधु मार्ग पर स्थित स्टेट बैंक ऑफ इंडिया की इमारत में घुसे थे। वे वहाँ क्यों गए, इसकी वजह ठीक-ठीक समझ में नहीं आती। वैसे हमारे गाँव का रमेश दत्त शहर में भूमि विकास सहकारी बैंक में क्लर्क है। हो सकता है पिताजी के दिमाग में सिर्फ बैंक रहा हो और यहाँ से गुजरते हुए अचानक उन्होंने स्टेट बैंक लिखा हुआ देखा हो और वे उधर घूम गए हों। उन्होंने अब तक पानी नहीं पिया था इसलिए उन्होंने सोचा होगा कि वे रमेश दत्त से पानी भी माँग लेंगे, अदालत जाने का रास्ता भी पूछ लेंगे और बता सकेंगे कि उनका सिर घूम-सा रहा है, यह भी कि कल शाम उन्हें तिरिछ ने काटा था। स्टेट बैंक के कैशियर अग्निहोत्री के अनुसार वह उस समय कैश रजिस्ट्री चेक कर रहा था। उसकी मेज पर लगभग अट्ठाइस हजार रुपयों की गड्डियां रखी हुई थीं। उस वक्त ग्यारह से दो-तीन मिनट ऊपर हुए होंगे, तभी पिताजी वहाँ आए। उनके चेहरे पर धूल लगी हुई थी, चेहरा डरावना था और अचानक ही उन्होंने जोर से कुछ कहा था। अग्निहोत्री का कहना था कि मैं अचानक डर गया। अमूमन ऐसे लोग बैंक के इतने भीतर, कैशियर की टेबिल तक नहीं पहुँच पाते। अग्निहोत्री का कहना यह भी था कि अगर वह पिताजी को एकाध मिनट पहले से अपनी ओर आता हुआ देख लेता, तब शायद न डरता। लेकिन हुआ यह कि वह पूरी तरह से कैश रजिस्टर के हिसाब-किताब में डूबा हुआ था, तभी अचानक

पिताजी ने आवाज निकाली और सिर उठाते ही उन्हें देखकर वह डर गया और चीख पड़ा। उसने घंटी भी बजा दी।

बैंक के चपरासियों, दो चौकीदारों और दूसरे कर्मचारियों के अनुसार अचानक ही कैशियर की चीख और घंटी की आवाज से वे सब लोग चौंक गए और उस तरफ दौड़े, तब तक नेपाली चौकीदार थापा ने पिताजी को दबोच लिया था और मारता हुआ कॉमन रूम की तरफ ले जा रहा था। एक चपरासी रामकिशोर, जिसकी उम्र पैंतालीस के आस-पास थी, ने कहा कि उसने समझा कि कोई शराबी द तर में घुस आया है, या पागल और चूँकि उसकी डयूटी बैंक के मु य दरवाजे पर थी इसलिए ब्रांच मैनेजर उसे चार्जशीट कर सकता था। लेकिन हुआ यह कि जब पिताजी को मारा जा रहा था, तभी उन्होंने अंग्रेजी में कुछ बोलना शुरू कर दिया। इसी वजह से चपरासियों का शक बढ़ गया। इसी बीच शायद असिस्टेंट ब्रांच मैनेजर मेहता ने यह कह दिया कि इस आदमी की अ%छी तरह से तलाशी ले लेना तभी बाहर निकलने देना। वैसे चपरासी रामकिशोर का कहना था कि पिताजी का चेहरा अजीब तरह से डरावना हो गया था। उस पर धूल जमा हो गई थी और शराब की बास आ रही थी। बैंक के चपरासियों ने पिताजी को %यादा मारने-पीटने की बात से इनकार किया, लेकिन बैंक के बाहर, ठीक दरवाजे के पास जो पान की दुकान है, उसमें बैठनेवाले बुन्नू का कहना था कि जब साढ़े ग्यारह बजे के आस-पास पिताजी बैंक से बाहर आए तो उनके कपड़े फटे हुए थे और निचला होंठ क़ट गया था, जहाँ से खून निकल रहा था। आँखों के नीचे सूजन और कत्थई चकते थे। ऐसे चकते बाद में बैंगनी या नीले पड़ जाते हैं।

इसके बाद, यानी साढ़े ग्यारह बजे से लेकर एक बजे के बीच पिताजी कहाँ-कहाँ गए, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। हाँ स्टेट बैंक के बाहर पान की दुकान लगानेवाले बुन्नू ने एक बात बताई थी हालाँकि इस बारे में वह पूरी तरह स्पष्ट नहीं था, या हो सकता है कि स्टेट बैंक के कर्मचारियों से डर की वजह से वह साफ-साफ बतलाने से कतरा रहा हो। बुन्नू ने बतलाया था कि स्टेट बैंक से बाहर निकलने पर शायद (वह %शायद% पर बहुत जोर डाल रहा था) पिताजी ने कहा था कि उनके रुपए और कागजात बैंक के चपरासियों ने छीन लिए हैं। लेकिन बुन्नू का कहना था कि हो सकता है पिताजी ने कोई और बात कही हो, क्योंकि वे ठीक से बोल नहीं पा रहे थे, उनका निचला होंठ काफी कट गया था, मुँह से लार भी बह रही थी और उनका दिमाग सही नहीं था।

मेरा अपना अंदाजा है कि इस समय तक पिताजी पर काढ़े का असर बहुत ज्यादा हो चुका था। हालाँकि पंडित राम औतार इस बात से इनकार करते हैं। उनका कहना था कि धतूरे के बीज तो होली के दिनों में भाँग के साथ भी घोटे जाते हैं, लेकिन कभी ऐसा नहीं होता कि आदमी पूरी तरह से पागल हो जाए। पंडित राम औतार का मानना है कि या तो तिरिछ का जहर उस समय पिताजी के शरीर में चढ़ना शुरू हो गया था और उसका नशा उनके दिमाग तक पहुँचने लगा था। या फिर बहुत संभव है कि जब स्टेट बैंक में पिताजी

को थापा चौकीदार और चपरासियों ने मारा-पीटा था तब उनके सिर के पीछे की तरफ कोई चोट लग गई हो और उस धक्के से उनका दिमाग सनक गया हो। लेकिन मुझे लगता है कि उस समय तक पिताजी को थोड़ा-बहुत होश था और वे पूरी कोशिश कर रहे थे कि किसी तरह वे शहर से बाहर निकल जाएँ। शायद रुपए और अदालत के कागजात बैंक में छिन जाने की वजह से उन्होंने सोचा हो कि अब यहाँ रहने का कोई मतलब भी नहीं है। उन्होंने शायद एकाध बार सोचा भी होगा कि वापस स्टेट बैंक जाकर अपने कागजात तो कम-से-कम माँग लाएँ। फिर ऐसा करने की उनकी हि मत नहीं पड़ी होगी। वे डर गए होंगे। उन्हें उनके जीवन में पहली बार इस तरह से मारा गया था, इसलिए वे ठीक से सोच पाने में सफल नहीं हो पा रहे होंगे। उनका शरीर बहुत दुबला था और बचपन से ही उन्हें एपेंडिसाइटिस की शिकायत थी। यह भी हो सकता है कि उस वक्त तक उन पर काढ़े का असर इतना ज्यादा हो गया हो कि वे एक चीज पर देर तक सोच ही नहीं पा रहे हों और दिमाग में हर पल पैदा होनेवाला, छोटे-छोटे बुलबुलों जैसे विचारों या नए-नए झटकों के वश में आकर इधर से उधर चल पड़ते रहे हों। लेकिन मैं यह जानता हूँ, मुझे अच्छी तरह से महसूस होता है कि उनके दिमाग में घर लौट आने और शहर से बाहर निकल जाने की बातएक स्थाई, बार-बार कहीं अँधेरे से उभरनेवाली, भले ही बहुत क्षीण और बहुत धुंधली बात—जरूर रही होगी।

पिताजी लगभग सवा बजे शहर के पुलिस थाना पहुँचे थे। थाना शहर के बाहरी छोर पर सर्किट हाउस के पास बने विजय स्तंभ के पास है। आश्चर्य यह है कि थाने से बमुश्किल एक किलोमीटर दूर अदालत भी है। अगर पिताजी चाहते तो यहाँ से पैदल ही दस मिनट में अदालत पहुँच सकते थे। समझ में यह नहीं आता कि पिताजी अगर यहाँ तक पहुँचे थे, क्या तब तक उनके दिमाग में अदालत जाने की बात रह भी गई थी? उनके कागजात तो रह नहीं गए थे।

थाने के एस.एच.ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह ने कहा कि उस वक्त एक बजकर पंद्रह मिनट हुए थे। वे घर से लाए गए टिफिन को खोलकर लंच लेने की तैयारी कर रहे थे। आज टिफिन में पराँठों के साथ करेले रखे हुए थे। करेले वे खा नहीं पाते और इसी उलझन में थे कि अब क्या करें। तभी पिताजी वहाँ आए थे। उनके शरीर पर कमीज नहीं थी, पैंट फटी हुई थी। लगता था कि वे कहीं गिरे होंगे या किसी वाहन ने उन्हें टक्कर मारी होगी। थाने में उस वक्त एक ही सिपाही गजाधर प्रसाद शर्मा मौजूद था। सिपाही का कहना था कि उसने सोचा कि शायद कोई भिखमंगा थाने में घुस आया है। उसने आवाज भी दी लेकिन पिताजी तब तक एस.एच.ओ. राघवेंद्र प्रताप सिंह की टेबिल तक पहुँच चुके थे। एस.एच.ओ. ने कहा कि करेलों की वजह से वैसे भी उनका मूड ऑफ था। तेरह साल के विवाहित जीवन के बावजूद पत्नी यह नहीं जान पाई थी कि उन्हें कौन-सी चीजें बिल्कुल नापसंद हैं, इतनी नापसंद कि वे उन चीजों से घृणा करते हैं। उन्होंने जैसे ही निवाला मुँह में रखा, पिताजी बिल्कुल उनके करीब पहुँच गए। पिताजी के चेहरे और कंधों के नीचे उल्टी लगी हुई थी

और उसकी बहुत तेज गंध उठ रही थी। एस.एच.ओ. ने पूछा कि क्या बात है। तो जवाब में पिताजी ने जो कुछ कहा उसे समझना बहुत मुश्किल था। एस.एच.ओ. राघवेंद्र सिंह याद में पछता रहे थे कि अगर उन्हें मालूम होता कि यह आदमी बकेली ग्राम का प्रधान और भूतपूर्व अध्यापक है तो वे उसे थाने में ही कम-से-कम दो-चार घंटे बिठा लेते। बाहर न जाने देते। लेकिन उस समय उन्हें लगा कि यह कोई पागल है और उन्हें खाते हुए देखकर यहाँ तक घुस आया है इसीलिए उन्होंने सिपाही गजाधर शर्मा को गुस्से में आवाज दी। सिपाही पिताजी को घसीटता हुआ बाहर ले गया। गजाधर शर्मा का कहना था कि उसने पिताजी के साथ कोई मार-पीट नहीं की और उसने देखा था कि जब वे थाने आए थे तब उनका निचला होंठ कटा था। ठुड्डी पर कहीं रगड़ा खाकर गिरने से खरोंच के निशान थे और कुहनियाँ छिली हुई थीं। वे कहीं-न-कहीं गिरे जरूर थे।

यह कोई नहीं जानता कि थाने से निकलकर लगभग डेढ़ घंटे पिताजी कहाँ-कहाँ भटकते रहे। सुबह दस बजकर सात मिनट पर, जब वे शहर आए थे और मिनर्वा टाकीज के पासवाले चौराहे पर ट्रैक्टर से उतरे थे, तब से लेकर अब तक उन्होंने कहीं पानी पिया था या नहीं, इसे जानना मुश्किल है। इसकी सँभावना भी कम ही बनती है। हो सकता है तब तक उनका दिमाग इस काबिल न रह गया हो कि वे प्यास को भी याद रख सकें। लेकिन अगर वे पुलिस थाने तक पहुँचे तो उनके मस्तिष्क में, नशे के बावजूद, कहीं बहुत कमजोर-सा, अँधेरे में डूबा यह खयाल रहा होगा कि वे किसी तरह अपने गाँव जाने का रास्ता वहाँ पूछ लें, या उस ट्रैक्टर का पता पूछे या फिर अपने रुपए और अदालती कागजात छिन जाने की रिपोर्ट वहाँ लिखा दें। यह सोचने के करीब पहुँचना ही बुरी तरह से बेचैन कर डालने वाला है कि उस समय पिताजी सिर्फ तिरिछ के जहर और धतूरे के नशे के खिलाफ ही नहीं लड़ रहे थे, बल्कि हमारे मकान को बचाने की चिंता भी कहीं-न-कहीं उनके नशे की नींद में से बार-बार सिर उठा रही थी। शायद उन्हें अब तक यह लगने लगा हो कि यह सब कुछ जो हो रहा है, सिर्फ एक सपना है, पिताजी इससे जागने और बाहर निकलने की कोशिश भी करते रहे होंगे।

सवा दो बजे के आस-पास पिताजी को शहर के बिल्कुल उत्तरी छोर पर बसी सबसे संपन्न कॉलोनी—इतवारी कॉलोनी में घिसटते हुए देखा गया था। यह कॉलोनी सर्राफा के जौहरियों, पी.डब्ल्यू.डी. के बड़े ठेकेदारों और रिटायर्ड अफसरों की कॉलोनी थी। कुछ समृद्ध पत्रकार-कवि भी वहीं रहते थे। यह कॉलोनी हमेशा शांत और घटनाहीन रहती थी। जिन लोगों ने यहाँ पिताजी को देखा था, उन्होंने बताया कि उस वक्त तक उनके शरीर में सिर्फ एक पट्टेदार जाँघिया बचा था, जिसका नाड़ा शायद टूट गया था और वे उसे अपने बाएँ हाथ से बार-बार सँभाल रहे थे। जिसने भी उन्हें वहाँ देखा, उसने यही समझा कि कोई पागल है। कुछ ने कहा कि वे बीच-बीच में खड़े होकर जोर-जोर से गालियाँ बकने लगते थे। बाद में, उसी कॉलोनी में रहनेवाले एक रिटायर्ड तहसीलदार सोनी साहब और शहर के सबसे बड़े अखबार के विशेष संवाददाता और कवि सत्येंद्र थपलियाल ने बताया

कि उन्होंने पिताजी के बोलने को ठीक से सुना था और दरअसल वे गालियाँ नहीं बक रहे थे बल्कि बार-बार कह रहे थे—''मैं रामस्वारथ प्रसाद, एक्स स्कूल हेड मास्टर...एंड विलेज हेड ऑफ...ग्राम बकेली...।'' कवि पत्रकार थपलियाल साहब ने दुःख जाहिर किया। दरअसल उसी समय वे अमरीकी दूतावास की किसी खास पार्टी में संगीत सुनने दिल्ली जा रहे थे इसलिए जल्दबाजी में वे चले गए। हाँ तहसीलदार सोनी साहब का कहना था कि ''मुझे उस आदमी पर बहुत तरस आया और मैंने लड़कों को डाँटा भी। लेकिन दो-तीन लड़कों ने कहा कि यह आदमी रामरतन सर्राफ की बीवी और साली पर हमला करने वाला था।'' तहसीलदार ने कहा कि ऐसा सुनने के बाद उन्हें भी लगा कि हो सकता है यह कोई बदमाश हो और नाटक कर रहा हो। लड़के उन्हें तंग करने में लगे थे और पिताजी बीच-बीच में जोरजोर से बोलते थे, ''मैं रामस्वारथ प्रसाद...एक्स स्कूल हेडमास्टर...''

अगर हिसाब लगाया जाए तो मिनर्वा टाकीज के पासवाला चौराहा, जहाँ पिताजी ट्रैक्टर से सुबह दस बजकर सात मिनट पर उतरे थे, वहाँ से लेकर देशबंधु मार्ग का स्टेट बैंक फिर विजय स्तंभ के पास का थाना और शहर के बाहरी उत्तरी छोर पर बसी इतवारी कॉलोनी को मिलाकर वे अब तक लगभग तीस-बत्तीस किलोमीटर की दूरी तक भटक चुके थे। ये जगहें ऐसी हैं जो एक ही दिशा में नहीं है। इसका मतलब यह हुआ कि पिताजी की दिमागी हालत यह थी कि उन्हें ठीक-ठीक कुछ सूझ नहीं रहा था और वे अचानक ही, किसी भी तरफ चल पड़ते थे। जहाँ तक सर्राफ की पत्नी और साली पर उनके हमला करने की बात है, जिसे थपलियाल साहब सच मानते हैं, मेरा अपना अनुमान है कि पिताजी उनके पास या तो पानी माँगने गए होंगे या बकेली जानेवाली सड़क के बारे में पूछने। उस एक पल के लिए पिताजी को होश जरूर रहा होगा। लेकिन इस हुलिए के आदमी को अपने इतना करीब देखकर वे औरतें डरकर चीखने लगी होंगी। वैसे, पिताजी की दाहिनी आँख के ऊपर भौंह पर जो चोट लगी थी और जिसका खून रिसकर उनकी आँख पर आने लगा था, वह चोट उनको इतवारी कॉलोनी में ही लगी थी, क्योंकि बाद में लोगों ने बताया कि लड़के उन्हें बीच-बीच में ढेले मार रहे थे।

वह जगह इतवारी कॉलोनी से बहुत दूर नहीं है, जिस जगह पिताजी को सबसे ज्यादा चोटें लगीं। नेशनल रेस्टोरेंट नाम के एक सस्ते से ढाबे के सामने की खाली जगह पर पिताजी घिर गए थे। इतवारी कॉलोनी से लड़कों का जो झुंड उनके पीछे पड़ गया था, उसमें कुछ बड़ी उम्र के लड़के भी शामिल हो गए थे। नेशनल रेस्टोरेंट में काम करनेवाले नौकर सत्ते का कहना था कि पिताजी ने गलती यह की थी कि एक बार उन्होंने गुस्से में आकर भीड़ पर ढेले मारने शुरू कर दिए थे। शायद उन्हीं का एक बड़ा-सा ढेला सात-आठ साल के लड़के विकी अग्रवाल को लग गया था, जिसे बाद में कई टाँके लगे थे। सत्ते का कहना था कि इसके बाद झुंड ज्यादा खतरनाक हो गया था। वे हल्ला मचा रहे थे और चारों तरफ से पिताजी पर पत्थर मार रहे थे। ढाबे के मालिक सरदार सतनाम सिंह ने बताया कि उस वक्त पिताजी के जिस्म पर सिर्फ पट्टेवाली एक चड्डी थी, दुबले शरीर की हड्डियाँ और छाती

के सफेद बाल दिख रहे थे। पेट पिचका हुआ था। ये धूल और मिट्टी में लिथड़े हुए थे, सिर के सफेद बाल बिखर गए थे, दाहिनी आँख के ऊपर से और निचले होंठ से खून बह रहा था। सतनाम सिंह ने दुःख और पछतावे के साथ कहा—'मेरे को क्या मालूम था कि यह आदमी सीधा-सादा, इज्जतदार, साख-रसूख का इंसान है और नसीब के फेर में इसकी ये हालत हो गई है।' वैसे ढाबे में कप-प्लेट धोनेवाले नौकर हरी का कहना था कि बीच-बीच में पिताजी भीड़ को अंड-बंड गालियाँ दे-देकर ढेले मारने लगते थे—'आओ ससुरो...आओ...एक-एक को मार डालेंगा भोसड़ीवालो...तु हारी माँ की...' लेकिन मुझे संदेह है कि पिताजी ने ऐसी कोई गाली दी होगी। हमने कभी भी उन्हें गाली देते नहीं सुना था।

मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ, क्योंकि पिताजी को मैं बहुत अच्छी तरह से जानता हूँ कि, इस समय तक, उन्हें कई बार लगा होगा कि उनके साथ जो कुछ हो रहा है, वह वास्तविकता नहीं है, एक सपना है। पिताजी को ये सारी घटनाएँ ऊलजलूल, ऊटपटाँग और बेमतलब लगी होंगी। वे इस सब पर अविश्वास करने लगे होंगे। उन्होंने सोचा होगा कि यह सब क्या बकवास है? वे तो गाँव से शहर आए ही नहीं हैं, उन्हें किसी तिरिछ ने नहीं काटा है। बल्कि तिरिछ तो होता ही नहीं है, एक मनगढंत और अंधविश्वास है...और धतूरे का काढ़ा पीने की बात तो हास्यास्पद है, वह भी एक तेली के खेत में उसका पौधा खोजकर। उन्होंने सोचा होगा और पाया होगा कि भला उन पर कोई मुकदमा क्यों चलेगा? उन्हें अदालत जाने की क्या जरूरत है?

मैं जानता हूँ कि सुरंग जैसा लंबा, स मोहक लेकिन. डरावना सपना जैसा मुझे आता था, पिताजी को भी आता रहा होगा। मेरी और उनकी बहुत-सी बातें बिल्कुल मिलती-जुलती थीं। मुझे लगता है कि इस समय तक पिताजी पूरी तरह से मान चुके होंगे कि यह जो कुछ हो रहा है सब झूठ और अवास्तविक है। इसीलिए वे बार-बार उस सपने से जागने की कोशिश भी करते रहे होंगे। अगर वे बीच-बीच में जोर-जोर से कुछ बोलने लगते थे, या शायद गालियाँ बकने लगते थे, तो इसी कठिन कोशिश में कि वे उस आवाज के सहारे उस दुःस्वप्न से बाहर निकल आएँ। नेशनल रेस्टोरेंट के नौकरों और मालिक सरदार सतनाम सिंह ने जैसा बताया था उसके अनुसार उस जगह पर पिताजी को बहुत चोटें आई थीं। उनकी कनपटी, माथे, पीठ और शरीर के दूसरे हिस्सों पर कई ईंटें और ढेले आकर लग गए थे। सड़क का ठेका लेनेवाले ठेकेदार अरोड़ा के बीस-बाइस साल के लड़के संजू ने उन्हें दो-तीन बार लोहे की रॉड से भी मारा था। सते का तो कहना था कि इतनी चोटों से कोई भी आदमी मर सकता था।

मुझे यह सोचकर एक अजीब-सी राहत मिलती है और मेरी फंसती हुई साँसें फिर से ठीक हो जाती हैं कि उस समय पिताजी को कोई दर्द महसूस नहीं होता रहा होगा, क्योंकि वे अच्छी तरह से, पूरी तार्किकता और गहराई के साथ विश्वास करने लग गए होंगे कि यह सब सपना है और जैसे ही वे जागेंगे, सब ठीक हो जाएगा। आँख खुलते ही आँगन

बुहारती माँ नजर आ जाएगी या नीचे फर्श पर सोते हुए मैं और छोटी बहन दिख जाएँगे...गौरइयों का झुंड...हो सकता है कि उन्हें बीच-बीच में अपने इस अजीबो-गरीब सपने पर हँसी भी आई हो।

अगर पिताजी ने गुस्से में लड़कों की तरफ खुद भी ढेले मारने शुरू कर दिए तो इसके पीछे पहली वजह तो यही थी कि उन्हें यह बहुत अच्छी तरह से पता था कि ये ढेले सपने के भीतर जा रहे हैं और इससे किसी को कोई चोट नहीं आएगी। यह भी हो सकता है कि पूरी ताकत से ढेला मार कर वे उत्सुकता और बेचैनी से यह इंतजार करते रहे हों कि जैसे ही वह जाकर किसी लड़के के सिर से टकराएगा, उसका माथा नष्ट होगा और एक ही झटके में इस दुःस्वप्न के टुकड़े-टुकड़े बिखर जाएँगे और चारों ओर से वास्तविक संसार की बेतहाशा रोशनी अंदर आने लगेगी। उनका जोर-जोर से चीखना भी दरअसल गुस्से के कारण नहीं था, वे असल में मुझे, छोटी बहन को, माँ को या किसी को भी पुकार रहे थे कि अगर वे अपने आप इस सपने से जाग पाने में सफल न भी हो पाएँ, तब भी कोई तो आकर उन्हें जगा दे।

एक सबसे बड़ी विडंबना भी इसी बीच हुई। हमारे गाँव की ग्राम पंचायत के सरपंच और पिताजी के बचपन के पुराने दोस्त पंडित कंधई राम तिवारी लगभग साढ़े तीन बजे नेशनल रेस्टोरेंट के सामने, सड़क से गुजरे थे। वे रिक्शे पर थे। उन्हें अगले चौराहे से बस लेकर गाँव लौटना था। उन्होंने उस ढाबे के सामने इकट्ठी भीड़ को भी देखा और उन्हें यह पता भी चल गया कि वहाँ पर किसी आदमी को मारा जा रहा है। उनकी यह इच्छा भी हुई कि वहाँ जाकर देखें कि आखिर मामला क्या है। उन्होंने रिक्शा रुकवा भी लिया। लेकिन उनके पूछने पर किसी ने कहा कि कोई पाकिस्तानी जासूस पकड़ा गया है जो पानी की टंकी में जहर डालने जा रहा था, उसे ही लोग मार रहे हैं। ठीक इसी समय पंडित कंधई राम को गाँव जानेवाले बस आती हुई दिखी और उन्होंने रिक्शेवाले से अगले चौराहे तक जल्दी-जल्दी रिक्शा बढ़ाने के लिए कहा। गाँव जानेवाली यह आखिरी बस थी। अगर उस बस के आने में तीन-चार मिनट की भी देरी हो जाती तो वे निश्चित ही वहाँ जाकर पिताजी को देखते और उन्हें पहचान लेते। राज्य परिवहन की वह बस हमेशा आधा-पौन घंटा लेट रहा करती थी, लेकिन उस दिन, संयोग से, वह बिल्कुल सही समय पर आ रही थी।

सतनाम सिंह का कहना था कि वह भीड़ नेशनल रेस्टोरेंट के सामने से तब हटी और लोग तितर-बितर हुए जब बड़ी देर तक पिताजी जमीन से उठे ही नहीं। ईंट का एक बड़ा सा ढेला उनकी कनपटी पर आकर लगा था। उनके मुँह से खून आना शुरू हो गया था। सिर में भी चोटें थीं। सतनाम ने बताया कि जब पिताजी बहुत देर तक नहीं हिले-डुले तो लड़कों के झुंड में से किसी ने कहा कि लगता है यह मर गया। जब भीड़ छंटने के दस-पंद्रह मिनट बाद भी पिताजी नहीं हिले-डुले तो सतनाम सिंह ने सत्ते से कहा था कि वह उनके मुँह में पानी के छींटें मार कर देखे कि वे सिर्फ बेहोश हैं तो हो सकता है कि उठ जाएँ। लेकिन सत्ते पुलिस की वजह से डर रहा था। बाद में सतनाम सिंह ने खुद ही एक

बाल्टी पानी उनके ऊपर डाला था। दूर से पानी डालने के कारण जमीन की मिट्टी गीली होकर पिताजी के शरीर से लिथड़ गई थी।

सरदार सतनाम सिंह और सत्ते दोनों का कहना था कि लगभग पाँच बजे तक पिताजी उसी जगह पड़े हुए थे। तब तक पुलिस नहीं आई थी। फिर सतनाम सिंह ने सोचा कि कहीं उसे पंचनामा और गवाही वगैरह में न फँसना पड़ जाए इसलिए उसने ढाबा बंद कर दिया था और डिलाइट टाकीज में 'आन मिलो सजना' फिल्म देखने चला गया था।

उस समय लगभग छह बजे थे जब सिविल लाइंस की सड़क की पटरियों पर एक कतार में बनी मोचियों की दुकानों में से एक मोची गनेशवा की गुमटी में पिताजी ने अपना सिर घुसेड़ा। उस समय तक उनके शरीर पर चड्डी भी नहीं रह गई थी, वे घुटनों के बल किसी चौपाए की तरह रेंग रहे थे। शरीर पर कालिख और कीचड़ लगी हुई थी और जगह-जगह चोटें थीं। गनेशवा हमारे गाँव के तालाब के पारवाले ढोले का मोची है। उसने बताया कि मैं बहुत डर गया और मास्टर साहब को पहचान ही नहीं पाया। उनका चेहरा डरावना हो गया था और चिन्हाई में नहीं आता था। मैं डर कर गुमटी से बाहर निकल आया और शोर मचाने लगा। दूसरे मोचियों के अलावा वहाँ कुछ और लोग भी इकट्ठा हो गए थे। लोगों ने जब गनेशवा की गुमटी के भीतर जाकर झाँका तो गुमटी के अंदर, उसके सबसे अंतरे-कोने में, टूटे-फूटे जूतों, चमड़ों के टुकड़ों, रबर और चिथड़ों के बीच पिताजी दुबके हुए थे। उनकी साँसें थोड़ी-बहुत चल रही थीं। उन्हें वहाँ से खींच कर, बाहर, पटरी पर निकाला गया। तभी गनेशवा ने उन्हें पहचान लिया। गनेशवा का कहना था कि उसने पिताजी के कान में कुछ आवाजें भी लगाईं लेकिन वे कुछ बोल नहीं पा रहे थे। बहुत देर बाद उन्होंने 'राम स्वारथ प्रसाद...' और 'बकेली' जैसा कुछ कहा था। फिर चुप हो गए थे।

पिताजी की मृत्यु सवा छह बजे के आसपास हुई थी। तारीख थी 17 मई, 1972। चौबीस घंटे पहले लगभग इसी वक्त उन्हें जंगल में तिरिछ ने काटा था। चौबीस घंटे पहले क्या पिताजी इन घटनाओं और इस मृत्यु का अनुमान कर सकते थे?

पिताजी का शव शहर के मुर्दाघर में पुलिस ने रखवा दिया था। पोस्टमार्टम में पता चला था कि उनकी हड्डियों में कई जगह फ्रैक्चर था, दायीं आँख पूरी तरह फूट चुकी थी, कॉलर बोन टूटा हुआ था। उनकी मृत्यु मानसिक सदमे और अधिक रक्तस्राव के कारण हुई थी। रिपोर्ट के अनुसार उनका आमाशय खाली था, पेट में कुछ नहीं था। इसका मतलब यही हुआ कि धतूरे के बीजों का काढ़ा उल्टियों द्वारा पहले ही निकल चुका था।

हालाँकि थानू कहता है कि अब तो यह तय हो गया कि तिरिछ के जहर से कोई नहीं बच सकता। ठीक चौबीस घंटे बाद उसने अपना करिश्मा दिखाया और पिताजी की मृत्यु हुई। पंडित राम औतार भी यही कहते हैं। हो सकता है कि पंडित राम औतार इसलिए ऐसा कहते हों कि वे खुद को विश्वास दिलाना चाहते हों कि धतूरे के काढ़े का पिताजी की मृत्यु से कोई संबंध नहीं था।

मैं सोचता हूँ, अंदाजा लगाने की कोशिश करता हूँ कि शायद अंत में, जब गनेशवा ने अपनी गुमटी के बाहर, पिताजी के कान में आवाज दी होगी तो पिताजी सपने से जाग गए होंगे। उन्होंने मुझे, माँ को और छोटी बहन को देखा होगा—फिर वे दातून लेकर नदी की तरफ चले गए होंगे। नदी के ठंडे पानी से उन्होंने अपना चेहरा धोया होगा, कुल्ला किया होगा और इस लंबे दु:स्वप्न को वे भूल गए होंगे। उन्होंने अदालत जाने के बारे में सोचा होगा। हम लोगों के मकान की चिंता ने उन्हें परेशान किया होगा।

लेकिन मैं अपने सपने के बारे में बताना चाहता हूँ, जो मुझे अक्सर आता है। वह यों है—कि मैं खेतों की मेंड़, गाँव की पगडंडी से होता हुआ जंगल पहुँच गया हूँ। मैं रक्सा नाला, कीकर के पेड़ को देखता हूँ। वह भूरी चट्टान वहाँ उसी जगह है, जो सारी बारिश नाले के पानी में डूबी रहती है। मैं देखता हूँ कि तिरिछ की लाश उसके ऊपर पड़ी हुई है। मुझे एक बेतहाशा खुशी अपने घेरे में ले लेती है। आखिर वह मारा गया। मैं पत्थर लेकर तिरिछ को कुचलने लगता हूँ, जोर-जोर से उसे मारता हूँ। मेरे पास थानू। मिट्टी का तेल और माचिस लिए खड़ा है। तभी, अचानक ही, मैं पाता हूँ कि मैं उस चट्टान पर नहीं हूँ। थानू भी वहाँ नहीं है, वहाँ कोई जंगल नहीं है बल्कि मैं दरअसल शहर में हूँ। मेरे कपड़े बहुत ही मैले, फटे और चिथड़ों जैसे हो गए हैं। मेरे गालों की हड्डियाँ निकली हैं। बाल बिखरे हैं। मुझे प्यास लगी है और मैं बोलने की कोशिश करता हूँ। शायद मैं बकेली, अपने घर जाने का रास्ता पूछना चाहता हूँ और तभी अचानक चारों ओर शोर उठता है...घंटियाँ बजने लगती हैं...हजारों-हजारों घंटियाँ...मैं भागता हूँ।

मैं भागता हूँ...मेरा पूरा शरीर बेदम होने लगता है, फेफड़े फूल जाते हैं। मैं पासपास कदम रख कर अचानक लंबी-लंबी छलाँगें लगाता हूँ, उड़ने की कोशिश करता हूँ। लेकिन भीड़ लगता है मेरे पास पहुँचने वाली होती है। एक अजीब-सी गर्म और भारी हवा मुझे सुन्न कर देती है। अपनी हत्या की साँसें मुझे छूने लगती हैं...और आखिरकार वह पल आ जाता है, जब मेरे जीवन का अंत होने वाला होता है...

मैं रोता हूँ...भागने की कोशिश करता हूँ। मेरा पूरा शरीर नींद में ही पसीने में डूब जाता है। मैं जोर-जोर से बोल कर जागने की कोशिश करता हूँ...मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि यह सब सपना है...और अभी आँख खोलते ही सब ठीक हो जाएगा...मैं सपने के भीतर अपनी आँखें फाड़ कर देखता हूँ...दूर तक...लेकिन वह पल आखिर आ ही जाता है...

माँ बाहर से मुझे देखती है। मेरा माथा सहलाकर वह मुझे रजाई से ढाँप देती है और मैं वहाँ अकेला छोड़ दिया जाता हूँ। अपनी मृत्यु से बचने की कोशिश में जूझता, बेदम होता, रोता, चीखता और भागता।

माँ कहती हैं मुझे अभी भी नींद में बड़बड़ाने और चीखने की आदत है। लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ और यही सवाल मुझे हमेशा परेशान करता है कि मुझे आखिरकार अब तिरिछ का सपना क्यों नहीं आता?

□

तिरिछ

शब्दार्थ—**राहत** = संतोष, **तिजोरी** = धन रखने का बक्सा, **जोखिम** = खतरा, **छिउले** = झाड़, **बुर्जें** = मीनारें, **अभेद्य** = न भेदा जा सके, **दरार** = फांक, **दुःस्वप्न** = बुरे सपने, **इंद्रजाल** = जादू, **डग** = कदम, **चकमा** = धोखा, **घाघ** = चालक, **खौफनाक** = डराने वाला, **यातनादायक** = कष्टकारक, **नाजुक** = बुरे, **वध** = हत्या, **जख्म** = घाव, **गनीमत** = अच्छा रहा, **खासियत** = विशेषता, **गैर-जमानती वारंट** = जमानत न मिलने वाला सम्मन, **विष** = जहर, **आविष्कार** = खोज, **फिराक** = मौके, **खोहीं** = छेदों, **चिरायंध** = बदबू, **बेतहाशा** = बहुत अधिक, **तकरीबन** = लगभग, **विस्तृत ब्यौरा** = विस्तारपूर्ण विवरण, **बौखलाहट** = गुस्से से, **इमारत** = भवन, **अमूमन** = प्रायः, **चार्जशीट** = दंडित, **कतरा रहा** = बच रहे, **संपन्न** = धनी, **साख-रसूख** = इज्जत और जान पहचान वाला, **नसीब** = भाग्य, **चिन्हाई** = पहचान, **रक्तस्राव** = खून बहने, **सदमें** = धक्का।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. हम पिता के बारे में क्या अच्छी तरह जानते थे?
   (क) संसार के सारे ज्ञान की तिजोरी उनके पास है।
   (ख) वे एक सम्पन्न व्यक्ति हैं।
   (ग) वे बहुत कम बोलते हैं।
   (घ) वे सबके प्रिय व्यक्ति हैं। (क)
2. मेरी और माँ की पिता के विषय में क्या कोशिश रहती?
   (क) वे हमसे खूब बात करें।
   (ख) वे परिवार को सुखी रखें।
   (ग) वे अपनी दुनिया में सुख चैन से रहें।
   (घ) वे किसी से सम्पर्क न रखें। (ग)
3. पिता ने मुझे पत्र के साथ डॉक्टर पंत के पास क्यों भेजा?
   (क) इलाज के लिए (ख) फीस के लिए पैसे लेने।
   (ग) दवा लेने के लिए (घ) कर्ज माँगने के लिए (ख)
4. चटुआ नाई तिरिछ का जहर किससे उतरता था?
   (क) झाड़ा देकर
   (ख) चीरा लगाकर
   (ग) खून निकालकर
   (घ) अरंड के पत्ते और कंडे की राख से (घ)
5. तिरिछ आदमी को काटते ही क्या करता है?
   (क) भाग जाता है
   (ख) किसी जगह पेशाब करता है और उसी पेशाब में लोटता है

(ग) पानी पीता है
(घ) आदमी को सूँघता है (ख)

6. दूसरे दिन पिताजी को शहर क्यों जाना था?
(क) अदालत में पेशी थी (ख) सामान खरीदने
(ग) सिनेमा देखने (घ) वकील से मिलने (क)

7. पिताजी किस साधन से शहर गये?
(क) बस से (ख) पैदल
(ग) मोटर साइकिल से (घ) ट्रैक्टर से (घ)

8. वैद्य पंडित राम औतार के अनुसार चरक का निचोड़ किस बात से है?
(क) जड़ी-बूटी से इलाज करने में।
(ख) विष को विष ही मारता है।
(ग) तिरिछ के जहर का असर चौबीस घंटे रहता है। (ख)
(घ) काटने पर तिरिछ को मारकर जला देना चाहिए।

9. पंडित राम औतार ने तिरिछ के जहर का इलाज क्या बताया?
(क) घाव पर चूना लगाना
(ख) झाड़-फूंक करना
(ग) घाव से खून निकालना (घ)
(घ) धतूरे के बीजों का काढ़ा पिलाना

10. शहर में थाने में पिताजी को कौन एस.एच.ओ. मिले?
(क) राघवेन्द्र प्रताप सिंह (ख) थानू सिंह (क)
(ग) बचन सिंह (घ) बलवान सिंह

प्रश्न

1. 'तिरिछ' कहानी का कथानक अपने शब्दों में लिखिए।
2. 'तिरिछ' कहानी की शैल्पिक संरचना को स्पष्ट कीजिए।
3. इस कहानी में 'तिरिछ' की उपस्थिति का क्या अर्थ है?
4. उदय प्रकाश की कहानी कला पर निबंध लिखिए।
5. 'तिरिछ' कहानी की मूल संवेदना स्पष्ट कीजिए।

□□

इसी कहानी ... के प्रयोग द्वारा वातावरण ... विशेष गुण हैं।

प्रेमचन्द

जन्म : 1880 ई. देहावसान : 19...

प्रेमचन्द का वास्तविक नाम धनपतराय था। 1904 से 1916 तक उर्दू में ... लिखने के बाद वे हिन्दी में आए और प्रेमचन्द हो गए। उन्होंने हिन्दी में लगभग ... कहानियाँ लिखीं तथा ''गोदान'', ''सेवा सदन'', ''प्रेमाश्रम'', ''गबन'', ''कायाकल्प'', ''कर्मभूमि'', ''निर्मला'' आदि उपन्यासों की रचना कर हिन्दी में उपन्यास विधा को ... प्रदान की। उन्होंने नाटक तथा निबन्ध भी लिखे। ''मेरे विचार'' में उनके निबन्ध ... हैं। प्रेमचन्द हिन्दी के उन लेखकों में हैं जिन्होंने हिन्दी गद्य को प्रौढ़ता प्रदान की तथा ... और उपन्यास विधाओं को नये आयाम दिए।

प्रेमचन्द के साहित्य का प्रमुख स्वर है—समाज-सुधार। ''कला का कार्य ... नहीं, सामाजिक सोद्देश्यता है।'' यही सूत्र उनके समस्त लेखन का आधार है। प्रेमचन्द ... कहानियों में समाज की कुरीतियों, राजनीतिक उथल-पुथल, किसानों की दयनीय ... सामाजिक रूढ़ियों के बन्धनों में तड़पती नारी की वेदना का मार्मिक चित्रण हुआ है। ... और शोषित के प्रति संवेदना से ओतप्रोत प्रेमचन्द की कहानियाँ पाठक के मन में ... करुणा ही नहीं जगातीं वरन् पाठक को शुभ और आदर्श की ओर भी प्रेरित करती हैं। ... आरम्भिक जीवन में प्रेमचन्द गाँधीजी से प्रभावित रहे अतः उनकी कहानियों में आद... का स्वर मुखरित है, किन्तु धीरे-धीरे वे यथार्थवाद को स्वीकार करते हैं। कफ़न, पू... रात आदि कहानियों में उनकी यथार्थवादी दृष्टि की झलक मिलती है।

प्रेमचन्द ने कहानियाँ अत्यन्त सरल और सहज शैली में लिखी हैं तथा उनकी ... अत्यन्त सजीव और पारदर्शी है। उनकी कहानियाँ भारतीय जीवन की विसंगतियों पर ... प्रहार करती हैं। उनकी सभी कहानियाँ ''मानसरोवर'' के आठ खण्डों में संकलि...

पूस की रात

'पूस की रात' प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है। कहानी का प्रारम्भ ... की चिन्ता से होता है और अन्त ऐसी अकर्मण्य दीनता में जो हर समस्या का स... तो लगती है, होती नहीं है। इस कहानी में प्रेमचन्द अपने इस उद्देश्य को दर्शाने में ...

हुए हैं कि छोटे किसान का शत्रु केवल साहूकार ही नहीं है, बल्कि प्रकृति भी है, जो प्रकृति उसे खेत में अन्न देती है, वही प्रकृति उसकी खेती को चौपट भी कर देती है और जिसके कारण ऋण की समस्या प्रारम्भ होती है और तब मजदूरी और खेती दोनों ही इस समस्या का उदर नहीं भर पातीं। वस्तुत: एक छोटे से हिस्से को छोड़कर सम्पूर्ण कहानी हल्कू का एकालाप जैसी है जिसमें मुन्नी और जबरा (कुत्ता) होते हुए भी उपस्थिति के कोई सार्थक संकेत नहीं दे पाते और जो नहीं है, जैसे कि सहना उसकी उपस्थिति ऐसी है, जिसके कारण शक्ति रहते हुए भी हल्कू निरुपाय है। निरुपाय इस अर्थ में कि कर्ज चुकाने के कारण वह कम्बल तक नहीं खरीद पाता और कम्बल न खरीद पाने से वह अन्तत: सर्दी के कारण नील गायों से खेत की रक्षा भी नहीं कर पाता।

कहानी में ठण्डी रात के वातावरण की बुनावट शिल्प की सपाटता के बावजूद उसे कलात्मक आयाम देती है। अन्त होते-होते कहानी ठण्ड में खेत पर सोने से बचने के कारण हल्कू की प्रसन्नता और मजदूरी करके मालगुजारी चुकाने की मुन्नी की चिन्ता पाठक को कहानी पर देर तक सोचने के लिए विवश कर देती है कि किसान की दुर्दशा उस मजदूर से भी कहीं अधिक है जो मजदूरी करके अपना पेट पालता है, जबकि किसान को उस मजदूरी में से खेत का लगान भी चुकाना है। कहानी प्रभावान्विति में सफल है और बिना किसी समाधान के प्रेमचन्द पाठक के सम्मुख केवल प्रश्न उठाकर ही छोड़ देते हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'

जन्म : 1890 ई. **देहावसान : 1937 ई.**

बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। किन्तु बचपन में ही पिता के दिवंगत हो जाने के कारण परिवार का बोझ इनके ऊपर ही आ गया। इसलिए वे आठवीं कक्षा से आगे शिक्षा प्राप्त न कर सके। लेकिन स्वाध्याय द्वारा उन्होंने संस्कृत, पाली, हिन्दी, उर्दू, अँग्रेजी भाषाओं और उनके साहित्य का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया। इतिहास, दर्शन और पुरातत्व के वे प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने भारतीय इतिहास और संस्कृति पर गहन अध्ययन किया। इसलिए उनके साहित्य का मूल स्वर है—भारतीय संस्कृति। नाटक, कविता, कहानियाँ, निबन्ध आदि विधाओं में जो कुछ उन्होंने लिखा उसमें भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति उनकी अनुरक्ति साफ झलकती है। आदर्शवाद से ओतप्रोत उनकी कहानियों में कोमल भाव, आवेग, अन्तर्द्वन्द्व, गीतात्मकता तथा व्यक्तिदृष्टि की प्रधानता है। प्रेम, त्याग, बलिदान एवं कर्तव्य भावना के रंग में सराबोर उनकी कहानियों के पात्र पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। प्रसादजी मूलत: नाटककार और कवि हैं। उनकी कहानियों में भी उनके ये दोनों रूप मुखर हैं। नाटकीय-घटना-संयोजन और काव्यमय भाषा-शैली के कारण उनकी कहानियाँ नाटक और कविता के अधिक समीप लगती हैं। तत्सम शब्दों के प्रयोग से वे वातावरण का सजीव निर्माण करते हैं। उनकी भाषा-शैली का अलग वैशिष्ट्य है

इसलिए कहानी में ''प्रसाद शैली'' ही प्रचलित हो गयी। 'आकाशदीप', 'आँधी', 'प्रति
'छाया' और 'इन्द्रजाल' उनके कहानी संकलन हैं।

आकाशदीप

यह जयशंकर प्रसाद की एक प्रतिनिधि कहानी है। इस कहानी में प्रसादजी ने के चरित्र की दृढ़ता और उसके मन में व्याप्त करुणा का बड़ा मार्मिक चित्रण किया चम्पा के पिता पोताध्यक्ष मणिभद्र के सहायक हैं। चम्पा भी उनके साथ रहती है। जल उनके पोत पर आक्रमण कर उन्हें लूटते रहते हैं। इन्हीं में एक जलदस्यु है—बुधगुप्त चम्पा प्रेम करती है। पर एक आक्रमण में चम्पा के पिता की मृत्यु हो जाती है और बुध मणिभद्र को भी मार देता है। चम्पा के मन में कहीं यह संदेह बैठ गया है कि उसके की हत्या बुधगुप्त ने की है, अतः उसके प्रेम में विरक्ति का तत्त्व आ मिलता है। प्रेम हुए भी चम्पा बुधगुप्त के परिणय में आबद्ध नहीं होना चाहती क्योंकि दस्यु बुधगुप्त हत्यारा है तथा उसमें मानवीय करुणा का अभाव है। बुधगुप्त चम्पा से सहमति लिए वि विवाह के आयोजन की व्यवस्था करता है, पर चम्पा उसे साफ इन्कार कर देती है। बुध उससे क्षमा-याचना करता है तथा कहता है कि उसने चम्पा के पिता की हत्या नहीं क पर चम्पा अपने निर्णय पर अडिग रहती है और बुधगुप्त से चले जाने का अनुरोध क है। चम्पा उसी द्वीप पर वह एकाकी जीवन व्यतीत करती है। कहानी की भाषा संस्कृतनि है तथा ऐतिहासिक परिवेश के अनुरूप है।

यशपाल

जन्म : 1903 ई. **देहावसान : 1976**

यशपाल ने लाहौर के नेशनल कॉलेज से बी. ए. तक शिक्षा ग्रहण की। यहीं भगतसिंह व चन्द्रशेखर 'आजाद' के सम्पर्क में आये तथा उनके क्रान्तिकारी दल सम्मिलित हो गये। उन्होंने तत्कालीन राजनीति में सक्रिय भाग लिया। यशपाल मार्क्सवाद विचारधारा के चिन्तक के रूप में जाने जाते हैं। उनकी विचारधारा का प्रभाव उनक रचनाओं पर भी है।

'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप', 'झूठा सच', 'बारह घण्टे' आदि (उपन्यास); 'ज्ञानदास', 'फूलों का कुर्ता', 'पिंजरे की उड़ान', 'तुमने क्यों कह मैं सुन्दर हूँ', 'चिंगारी' आदि (कहानी संग्रह); 'चक्कर क्लब', 'न्याय का संघर्ष', 'बात-बात में' (निबन्ध संग्रह); 'राह बीती', 'लोहे की दीवारों के दोनों ओर' (यात्रा वृत्तान्त) आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

यशपाल ने अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण किया है। उनकी कहानियों का कथानक यथार्थ जगत् से सम्बद्ध होता है। अतः उसमें न तो आदर्श की स्थापना का प्रयत्न रहता है न कल्पना का। उनकी कहानियाँ सामाजिक रूढ़ियों को अस्वीकार करती है तथा नैतिक आदर्शों पर व्यंग्य से सम्बन्धित कहानियों में उन्होंने प्रतीक

पद्धति का उपयोग किया। ये कहानियाँ अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक स्वतन्त्रता की धारणा से बँधी हैं तथा उद्देश्यपूर्ण हैं जिनके विषय आर्थिक विषमता, नैतिकता तथा यौन भावना आदि हैं। वे कहानियों में समाज की झूठी नैतिकता के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हैं। उनकी कहानियों के कथानक चुस्त, व्यंजक और यथार्थ चरित्रों पर आधारित होते हैं।

परदा

'परदा' यशपाल की महत्त्वपूर्ण कहानी है जिसमें मध्यवर्गीय चौधरी पीरबख्श की पारिवारिक विडम्बनाओं का चित्रण किया गया है। चौधरी पीरबख्श का परिवार एक संभ्रांत परिवार रहा है। पीरबख्श के दादा तथा पिता प्रभावशाली लोग रहे, पर उनके परिवार की आर्थिक स्थिति बराबर गिरती गयी और परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ती गयी। चौधरी पीरबख्श बारह रुपये महीने की मुंशीगीरी करते हैं पर अपने खानदान की इज्जत को बनाए रखने का पूरा प्रयास करते हैं। पन्द्रह वर्ष में उनका वेतन अठारह रुपये हो गया। परिवार की हालत खस्ता थी पर मोहल्ले में उनकी इज्जत थी जिसकी रक्षा उनके दरवाजे पर पड़ा परदा करता है।

परदा ही उनके घर की आन्तरिक स्थिति का पता बाहरवालों को नहीं लगने देता। चौधरी भी प्रयत्नशील रहते कि बाहर वालों को उनकी हालत का पता न चले। दरवाजे की किवाड़ें टूट गयीं तो परदा टंग गया। परदा फट गया तो दरवाजे पर पुश्तैनी दरी टांग दी गयी। उनकी हैसियत एक टाट खरीदने की भी नहीं थी। दरी का परदा ही चौधरी पीरबख्श की इज्जत को ढके रखता था।

पर यह भी बहुत दिनों तक उनकी इज्जत की रक्षा न कर सका। पंजाबी खान का कर्ज उन पर चढ़ रहा था। खान कर्जा मांगने आता तो चौधरी कहलवा देते कि वे घर पर नहीं हैं। एक रोज सुबह-सुबह खान आया और उसने परदे को झटक दिया। परदा गिरते ही चौधरी की इज्जत बेपरदा हो गयी। वे मूर्छित हो गये। खान ने जब अन्दर का दृश्य देखा तो वह भी ग्लानि से थूककर परदे को आंगन में फेंककर चला आया।

यशपाल ने इस कहानी में मध्यवर्ग की मानसिकता पर कटाक्ष किया है। झूँठी शान बनाए रखने के लिए मध्यवर्ग का व्यक्ति किस प्रकार अपनी कोशिशों में लगा रहता है। पर जब उसकी यथार्थ स्थिति सामने आती है तो चौधरी पीरबख्श की सी हालत हो जाती है। कहानी का अन्त स्तब्ध करने वाला है।

कमलेश्वर

परिचय—नयी कहानी आन्दोलन की वृहतत्रयी के—राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर-सबसे महत्त्वपूर्ण स्तम्भ और नयी कहानी के व्याख्याकार कमलेश्वर का जन्म 1932 ई. में उत्तर प्रदेश में हुआ था। अत्यन्त प्रखर मेधा के धनी कमलेश्वर कभी लेखन से तो कभी किसी आन्दोलन से तो कभी पत्रकारिता से सदैव सुर्खियों में रहते हैं। सौभाग्य

से उन्हें पहले ''नई कहानियाँ और फिर 'सारिका' का सम्पादन करने का अवसर मिला उसके बाद भी वे गंगा, कथायात्रा, श्रीवर्षा, इंगित, दैनिक जागरण, दैनिक भास्कर सम्पादन से जुड़े रहे। उन्होंने अमानुष, आँधी, मौसम, सारा आकाश जैसी फिल्मों का लेख किया तो दूरदर्शन के लिए 'चन्द्रकान्ता' सीरियल भी लिखा। उन्होंने दूरदर्शन के महानिदेश के पद पर भी कार्य किया और कुछ अच्छे कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए। उन्हें 'कित पाकिस्तान' उपन्यास पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला।

रचनाएँ—परिचय से स्पष्ट है कि कमलेश्वर एक बहुआयामी लेखक हैं। इसमें राय नहीं हो सकतीं क्योंकि उनका रचना संसार भी बहुत बड़ा है। उनकी कुछ प्रमुख कृतिय के नाम इस प्रकार हैं—**उपन्यास**—एक सड़क सत्तावन गलियाँ, डाक बंगला, तीस आदमी, समुद्र में खोया आदमी, काली आँधी, आगामी अतीत, वही बात, कितने पाकिस्ता आदि। **कहानी-संग्रह**—राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, खोई हुई दिशाएँ, माँस दरिया, जार्ज पंचम की नाक, बयान, कोहरा, कथा प्रस्थान आदि। **संस्मरण**—जो मैंने जिया यादों के चिराग, खंडित यात्राएँ। **अन्य**—नई कहानी की भूमिका, हिन्दोस्तां हमारा आदि

कमलेश्वर नियमित रूप से समाचार-पत्रों में राजनैतिक कॉलम लिखते हैं तथा उनक रचनात्मक लेखन का क्रम जारी है। किन्तु यह भी सच है कि रचनात्मक दृष्टि से वे को ऐसी कृति नहीं दे पाये जिसे हिन्दी की कालजयी रचना कहा जा सके। इसका कारण य भी हो सकता है कि कमलेश्वर आन्दोलन चलाने में माहिर रहे हैं। वे साहित्य में राजनी करते रहे हैं। उन्होंने जो भी आन्दोलन चलाया उसका घोषणा पत्र पहले जारी किया औ स्वयं को उसके केन्द्र में स्थापित किया।

कहानीकार—कहानीकार के रूप में कमलेश्वर 'राजा निरबंसिया' और 'नीली झील जैसी कहानियों के साथ उभरते हैं और ये कहानियाँ अपनी बुनावट में बहुत प्रभावित करत हैं। 'नीली झील' और 'नागमणि' जैसी कहानियों में वे प्रेम के भावुक और उदात्त रूप को प्रस्तुत करते हैं। 'राजा निरबंसिया' तथा उक्त कहानियों में कमलेश्वर ग्रामीण जीवन का चित्रण करते हैं तो 'कस्बे का आदमी', 'बयान' जैसी कहानियों में वे कस्बे के जीवन को केन्द्र में रखते हैं जबकि 'खोई हुई दिशाएँ', 'दिल्ली में एक मौत' जैसी कहानियों में वे महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं को अपनी कहानियों का कथ्य बनाते हैं। इस तरह कमलेश्वर की कहानियाँ कथ्य के स्तर पर जीवन के विस्तृत फलक को रूपायित करती हैं। वे अपनी वृथा दृष्टि पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'मनुष्य की सम्यक् मुक्ति के सम्बन्ध में' साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु रचनात्मक स्तर पर कमलेश्वर की कहानियों में कोई वैचारिक सजगता दिखायी नहीं देती।

कमलेश्वर कहानी बुनने का प्रयास करते हैं तो वे इस ओर पूरे सजग रहते हैं कि पाठक को कहानी पठनीय लगनी चाहिए और यह एक अच्छी बात है किन्तु इस चक्कर में वे कहीं-कहीं कहानी को कमजोर कर देते हैं। 'कस्बे का आदमी' और 'नौकरी पेशा' कहानियों में व्यर्थ के विवरणों से वे कहानियों को बोझिल बना देते हैं। विजयमोहन सिंह

ने उनके बारे में उपयुक्त टिप्पणी की है, "कमलेश्वर की दृष्टि कहानी के पीछे जिन्दगी, उसे बुनने वाले सामाजिक धागों की ओर ज्यादा रही है। लेकिन उस जिन्दगी को उदाहरणरूप में प्रस्तुत कहानियों से जोड़ने में हमेशा सफल नहीं हुए हैं।"

तथापि कमलेश्वर हिन्दी के एक महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं क्योंकि उन्होंने हिन्दी कहानी को कई आन्दोलन दिये, कहानी की अपनी तरह से व्याख्या की और महत्त्वपूर्ण कहानियाँ भी दीं। यदि 'राजा निरबंसिया' कहानी शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तो 'दिल्ली में एक मौत' महानगरीय संवेदनहीनता के चित्रण की दृष्टि से।

राजा निरबंसिया

उनकी सबसे अधिक चर्चित कहानियों में मानी जाती है। कहानी का रचाव कमलेश्वर ने बहुत कुशलता से किया है और दोहरे कथानक द्वारा नारियों के संकटों का बड़ी खूबी से वर्णन किया है। इस कहानी में माँ एक राजा की कहानी सुनाती है जिसकी रानी को कोई औलाद नहीं होती। इस लोककथा के समान्तर कमलेश्वर ने जगपती नामक निम्न मध्यवर्गीय युवक की पत्नी के अन्तसंघर्ष को चित्रित किया है। वस्तुत: जगपती की पत्नी चन्दा के भी कोई औलाद नहीं होती। परिवार तथा आसपड़ोस के लोग जगपती को निरबंसिया कह कर ताने देते हैं। इनसे जगपती और चंदा दोनों आहत होते हैं।

एक झगड़े में जगपती को गोली लगती है और उसे एक छोटे से अस्पताल में भर्ती किया जाता है जहाँ जगपती के इलाज की पूरी सुविधाएँ भी नहीं है, वहाँ अस्पताल में एक बचनसिंह नामक कंपाउंडर है जो चन्दा से प्रभावित होकर उसे बाहर से दवाइयाँ मंगवाकर जल्दी ईलाज करने का आश्वासन देता है। जगपती को चन्दा की बचनसिंह से नजदीकी खलने लगती है तभी वहाँ से बचनसिंह का दबादला हो जाता है। कुछ ठीक होकर जगपती चन्दा के साथ अपने घर आ जाता है और लकड़ी का धंधा करने लगता है। थोड़े दिन बाद उनसे मिलने बचनसिंह उनके घर आता है। इससे जगपती को जलन होती है पर वह कुछ कह नहीं पाता।

संयोग से चन्दा गर्भवती हो जाती है तो आस-पड़ोस के लोग ताना देते हैं कि पता नहीं किसका पाप ढो रही है। जगपती को भी लगता है कि चन्दा के पेट में जो बच्चा है वह बचनसिंह का है। चन्दा लोगों के तानों व जगपती की उपेक्षा से दुखी होकर अपने भाई के साथ पीहर चली जाती है।

लोककथा में भी रानी राजा के पास वेष बदलकर तब जाती है जब राजा यात्रा पर था। वह राजा से संबंध स्थापित करती है और गर्भवती हो जाती है। उसके दो पुत्र होते हैं, शक तो राजा को होता है पर रानी उसे सारा रहस्य समझा देती है। राजा पुत्रों के होने का जश्न मनाता है उधर पीहर में चन्दा भी एक पुत्र को जन्म देती है और कोई आकर जगपती को बताता है कि अपने पुत्र के साथ चन्दा किसी और के साथ बैठने वाली है। इस समाचार से जगपती को बहुत वेदना होती है वह अफीम खाकर आत्महत्या कर लेता

है और लिखकर छोड़ जाता है कि चन्दा मेरी पत्नी है और चन्दा ने जिस पुत्र को जन्म दिया है वह मेरा वारिस है। मेरे मरने के बाद वो दोनों आकर मेरी जो सम्पत्ति है, उसे सम्भाल ले।

यह कहानी यह भी संकेत करती है कि मध्यम वर्ग व निम्न मध्यवर्गीय महिलाओं को कैसी-कैसी यातनाएँ सहन करनी पड़ती है जबकि रानी के प्रति किसी को संदेह नहीं जाता।

रांगेय राघव

जन्म : 1923 ई. **देहावसान : 1962 ई**

डॉ. रांगेय राघव की माँ कन्नड़ और पिता तमिल थे। उनके पूर्वज तिरूपति के मन्दि से सम्बद्ध थे किन्तु राजगुरु होकर भरतपुर के वैर कस्बे में आ बसे थे। उनकी शिक्षा आग में हुई तथा वे अपने जीवन का अधिकांश आगरा में ही रहे। अंतिम वर्षों में वे जयपुर आकर बस गये थे। इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, रिपोर्ताज और कथाचित्र पर लेखनी चलाई है। आपके उत्कृष्ट उपन्यास 'घरोंदा', सीधा सादा रास्ता, हुजूर, काक विषाद-मठ, कब तक पुकारूँ, प्रोफेसर, छोटी सी बात, बन्दूक और बीन, उदयरे, कल्पन आखिरी आवाज, धरती मेरा घर, डॉक्टर आदि हैं। आपने अपने उपन्यासों और कहानि में वर्गभेद से पीड़ित मानवता के आर्त नाद को मुखरित किया है। आप स्वतन्त्र और जागरू चिन्तक के रूप में सामने आते हैं। आपके अधिकांश उपन्यास सामाजिक हैं और कु ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। आपने स्वस्थ चिन्तन पर आधारित मान्यताओं पर ब दिया है। घिसीपिटी और समय के प्रतिकूल मान्यताओं पर चोट की है। रांगेय राघव स 1942 से 1961 तक बराबर लिखते रहे। इनकी रचनाएँ, सांस्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय भाव और समाजवादी विचारधारा से ओतप्रोत हैं। यशपाल और नागार्जुन के समान इनकी गण भी उत्तर प्रेमचन्द काल के प्रमुख प्रगतिशील लेखकों में होती है। यह हिन्दी साहित्य क दुर्भाग्य रहा कि ऐसे प्रगतिशील लेखक की मृत्यु सन् 1962 में ही हो गई।

गदल

'गदल' रांगेय राघव की ही नहीं, हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी जाती है इसका कारण है गदल का आत्मसम्मानी चरित्र और कहानी में उसके चरित्र की गरिमा के साथ आंचलिकता का निर्वाह। यह कहानी ब्रज अंचल के ग्रामीण जीवन की निम्न जाति की गदल की भावनाओं को रेखांकित करती है। गदल का पति मर जाता है। गदल के बच्चे बड़े-बड़े हैं पर गदल चाहती है कि उसका अविवाहित देवर डोडी उसे अपनी पत्नी बना ले। उसकी जाति में यह सामान्य बात है। डोडी मन से तो गदल को चाहता है प समाज में बदनामी के डर से ऐसा नहीं कर पाता।

गदल एक अन्य व्यक्ति के घर बैठ जाती है। गाँव में उसकी बदनामी होती है। उसके

लड़के उससे नाराज होते हैं। यह डोडी को भी अच्छा नहीं लगता पर गदल किसी की परवाह नहीं करती। जब वह डोडी के पास आती है तो डोडी उससे अपने मन की बात कह देता है। वह स्वीकार करता है कि जगहंसाई के कारण वह गदल को अपनाने में संकोच करता रहा।

गदल दूसरे घर में है। दो दिन बाद ही उसे पता चलता है कि डोडी मर गया तो वह अपने घर भाग आती है। उसे लगता है डोडी उसके बिना दो दिन भी जिन्दा न रह सका। वह कानून के खिलाफ जाकर डोडी के मृत्युभोज में पूरे गाँव को निमंत्रित कर जिमाती है। पुलिस मृत्युभोज को रोकने आती है तो वह मृत्युभोज पूरा होने तक पुलिस को रोकती है और पुलिस की गोली उसे लगती है। पर वह मृत्युभोज पूरा कर जाती है।

इस तरह कहानी गदल और डोडी के अव्यक्त किन्तु पवित्र प्रेम को व्यक्त करती है और गदल के शक्तिशाली व्यक्तित्त्व को रेखांकित करती है।

कृष्णा सोबती

जन्म : 1925 ई. **देहावसान : 2019 ई.**

स्वातंत्र्योत्तर काल की अपनी तरह की कथाकार कृष्णा सोबती का जन्म सन् 1925 में गुजरानवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ था। स्त्री की आत्मसगजता, नौकरीपेशा स्त्री की समस्या और परम्परागत समाज में उसकी घुटन एवं उससे बाहर निकलने की छटपटाहट कृष्णा सोबती की कहानियों में प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त हुई है। कृष्णा सोबती नयी कहानी आन्दोलन से जुड़ी हुई कहानीकार हैं। संख्या की दृष्टि से उनकी कहानियाँ तो कम ही हैं लेकिन ये कहानियाँ उनकी अलग व विशिष्ट पहचान बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उनकी कहानियाँ 'बादलों के घेरे' संग्रह में संकलित हैं। कृष्णा सोबती की कहानियों में तीन तरह की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। एक तो प्रेम और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की कहानियाँ हैं जो नई कहानी की एक विशेष प्रवृत्ति रही है। उनकी इस तरह की कहानियों में रोमानीपन अधिक मिलता है। दूसरे वर्ग की कहानियों में उन्होंने स्त्री की यातना और पीड़ा को सामाजिक सन्दर्भों में चित्रित करने का प्रयास किया है। कृष्णा सोबती की कहानियों का तीसरा वर्ग देश-विभाजन और साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित त्रासदी, यातना और विडम्बनाओं का चित्रण है। 'सिक्का बदल गया' इसी तरह की कहानी है जहाँ मानवीय प्रेम के लुप्त होते जाने के बावजूद सद्भाव का एक संदेश निहित है। 'मित्रो मरजानी' (लम्बी कहानी), 'ऐ लड़की' जैसी अनेक कहानियाँ कृष्णा सोबती कलात्मकता के शिखरों का प्रमाण हैं। 'गुलाब जल गंडेरियाँ', 'दादी अम्मा', 'कहीं नहीं-कोई नहीं', 'मित्रो मरजानी' और 'ऐ लड़की' कृष्णा सोबती की अन्य चर्चित कहानियाँ हैं। उदासी, अकेलापन, अनुभूतियों की तीव्रता और गहराई उनके लेखन की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस तरह अपने समकालीनों में कृष्णा सोबती का एक अलग ही रंग उभरता है।

कृष्णा सोबती ने ज्यादातर लम्बी कहानियाँ ही लिखी हैं। तिन पहाड़, मित्रो मर ऐ लड़की और नाम पट्टिका उनकी लम्बी कहानियाँ हैं। इन कहानियों में उनकी सम्बन्धी एक अलग ही दृष्टि उभरती है जिसके कारण वे अपनी समकालीन लेखिक से भिन्न दिखाई देती हैं। उपदेशपरकता की बजाय वे जीवन के सत्य को प्रमुखता हैं और किसी प्रकार के नैतिक हस्तक्षेप को वे अपनी रचनाओं पर हावी नहीं होने 'मित्रो मरजानी' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

सिक्का बदल गया

कृष्णा सोबती ने 'सिक्का बदल गया' कहानी में मनुष्य की विवशता का अ करुण चित्र खींचा है। बदलाव की आँधी में मानवीय मूल्य बदलते अवश्य हैं पर वे यका इतना नहीं बदल जाते कि उन्हें पहचानना मुश्किल हो जाए। देश-विभाजन यहाँ की ज के लिए एक ऐसी त्रासदी थी जिसे सामान्य बदलाव की संज्ञा नहीं दी जा सकती। विभ के बाद जो परिस्थितियाँ बनीं उनमें एक आदमी दूसरे आदमी को पहचानने के लिए तै नहीं था। सदियों से एक साथ रहते आए लोग अचानक एक-दूसरे के दुश्मन हो गए। साम्प्रदायिक घृणा का विस्फोट था जिसमें राजनीति की भी बहुत बड़ी भूमिका थी। घृणा और हिंसा के उस बर्बर अभियान में कुछ ऐसे लोग बच गए थे जो मानवीय मू से एकदम खाली नहीं हुए थे। संवेदना के कुछ कतरे उनकी आत्मा में बच रहे थे। कतरे 'सिक्का बदल गया' में शाहनी को विदा करते समय आँखों से ढुलक पड़े थे, अ विवशता और कशिश के साथ कृष्णा सोबती की कहानियाँ परम्परा से एकदम विच्छि नहीं हैं बल्कि पुरानी परम्परा को अपनी शैली में समोकर नयी वस्तु को मनोरंजक हृदयग्राही ढंग से चित्रित करती है। आत्मनिर्भरता के वातावरण में आज नारी भले ही देर हो कि उसके पंख खुल गए हैं और वह खुले आकाश में विचरण करने के लिए स्व है लेकिन सामाजिक नीतियों और मानसिक ग्रंथियों से जूझते-जूझते उसके डैने टूट भी ज हैं और वह विवश-असहाय-सी हो जाती है, कभी अकेलेपन की यातना से तो कभी श की माँग के कारण।

उदय प्रकाश

जन्म : 1952 ई.

परिचय—स्वयं को मूलतः कवि मानने वाले विवादास्पद कथाकार उदय प्रकाश न पीढ़ी के सबसे क्षमतावान रचनाकारों में से हैं। वे स्वतंत्र लेखन पर ही निर्भर हैं यद्य पहले उन्होंने 'दिनमान' में नौकरी की थी। उनका जन्म मध्य प्रदेश में 1952 ई. में हुअ था। वे हिन्दी के ऐसे कथाकार हैं जिनकी हर कहानी पर कोई-न-कोई विवाद हो जा है। कभी उन पर आरोप लगता है कि उन्होंने अमुक कहानी किसी व्यक्ति विशेष को केन् में रखकर लिखी है तो कभी आरोप लगता है कि अमुक कहानी पर किसी विदेशी लेख की कहानी का प्रभाव है। किन्तु उनकी हर कहानी की चर्चा होती है। उनकी अनेक रचनाओं

का भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। वे एक बहुपठित लेखक हैं, उन्होंने फिल्म और टेलीविजन धारावाहिकों के लिए भी लेखन किया है। उन्होंने विभिन्न कहानियों पर भी फिल्में बनायी हैं। दिनमान के अलावा के लिए भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार, ओमप्रकाश साहित्य सम्मान, श्रीकांत वर्मा स्मृति सम्मान तथा पहल सम्मान प्राप्त हो चुके हैं। वे विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते रहते हैं।

रचनाएँ—उदय प्रकाश हमारे समय के ऐसे लेखक हैं जिनका अध्ययन और अनुभव बहुत व्यापक है तथा जो विभिन्न विषयों पर अलग-अलग विधाओं में लिखते रहते हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—**कविता-संग्रह**—सुनो कारीगर, अबूतर-कबूतर। **कहानी-संग्रह**—दरियाईघोड़ा, तिरिछ, और अन्त में प्रार्थना, पालगोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की आदि। उदय प्रकाश के इन्दिरा गाँधी की आखिरी लड़ाई, कला अनुभव तथा रोमां रोलां का भारत आदि अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं।

कहानीकार—भले ही उदय प्रकाश कहें कि वे मूलतः कवि हैं किन्तु उनकी कहानियों की चर्चा अधिक हुई है। इसका कारण यह है कि उनकी कहानियों की बनावट सीधी-सादी नहीं होती। वे अपनी कहानियों को कभी जादुई यथार्थ के साथ प्रस्तुत करते हैं तो कभी फंतासी में। वे कहानी के शिल्प के प्रति बहुत चौकन्ने हैं। इसलिए उनकी कहानियों पर यह आरोप के चर्चित होने का दूसरा कारण यह है कि लोग मानते हैं कि वे किसी-न-किसी जीवित और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को निशाना बनाकर कहानी लिखते हैं। उनकी कहानियों के पात्र वास्तविक जीवन में आसानी से पहचाने जा सकते हैं।

उदय प्रकाश न तो यह स्वीकार करते हैं कि उनकी कहानियाँ विदेशी कहानियों से प्रभावित हैं, न यह कि वे किसी व्यक्ति विशेष को निशाना बनाकर कहानी लिखते हैं। पर सब जानते हैं कि रामसजीवन की प्रेमकथा, पालगोमरा का स्कूटर, पीली छतरी वाली लड़की जैसी कहानियों के केन्द्र में कौन हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उदय प्रकाश की कहानियाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वे यह मानते हैं कि परम्परा से विचलन के द्वारा ही नयी रचना का सृजन सम्भव है। इसलिए वे कहानी के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर अपने लिए नये शिल्प चुनते हैं। वारेन हेस्टिंग्ज़ का सांड, और अंत में प्रार्थना जैसी कहानियों में शिल्प का चमत्कार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उदय प्रकाश की यह भी उपलब्धि है कि कहानी जैसी छोटी विधा को भी वे बहुत बड़ा आयाम प्रदान करते हैं। उनके पास अपनी दृष्टि है और अपने अनुभवों को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता है। उनकी कहानियों में बड़ी सूक्ष्म सांकेतिक व्यवस्था होती है। तिरिछ कहानी इसका सुन्दर उदाहरण है।

उदय प्रकाश की कहानियों में यह प्रवृत्ति जरूर अखरती है कि वे अपनी ओर से बहुत कहते हैं। कई बार पृष्ठ-के-पृष्ठ छोड़कर उनकी कहानी को पढ़ा जा सकता है। यद्यपि वे इसका औचित्य ठहराने का प्रयास भी करते हैं किन्तु लम्बे-लम्बे बयानों से कहानी कमजोर तो होती ही है, तथापि उदय प्रकाश वर्तमान में सबसे सम्भावनाशील लेखकों में से हैं।

तिरिछ

उदय प्रकाश की 'तिरिछ' कहानी में शहरी जीवन में व्याप्त संवेदनहीनता औ भयंकरता का संकेत ऐसी कथा के माध्यम से किया गया है जो प्रकट में असम्बद्ध प्रती होती है। तिरिछ एक जहरीला जानवर है जसके विष और काटने को लेकर लोक में बहुत सी गलत-सलत धारणाएँ प्रचलित हैं। इस कहानी के केन्द्र में एक संवेदनशील पिता क कहानी है जो शिक्षक तथा गाँव के सरपंच रहे हैं। लोग उनके शील स्वभाव के कारण उनक बहुत सम्मान करते हैं।

इस कहानी को मैं, जो पिता का पुत्र है, के माध्यम से बुना गया है—वहीं पिताज के व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन मैं एक सपने के रूप में करता है। पिता स्वभा से बहुत कम बोलने वाले और आत्मलीन व्यक्ति हैं। वे किसी को परेशान नहीं करते प लोगों से उन्हें उतना सम्मान नहीं मिल पाता। उनके मकान पर अदालत में मुकदमा चल रहा है। दो तारीखों पर अदालत गये नहीं और उनके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी ह गया।

एक शाम उन्हें तिरिछ काट लेता है। वे तिरिछ को तो मार देते हैं पर लोक विश्वा के कारण तिरिछ के विष का प्रभाव चौबीस घंटे तक असरदार रहता है। घर आते हैं त लोग झाड़-फूंककर विष उतारने का प्रयास करते हैं। घाव से उनका खून भी निकाल दे हैं। दूसरे दिन उन्हें शहर अदातल में पेशी पर जाना है। शहर जाने से उन्हें घबराहट होत है पर तारीख भुगतना जरूरी है। वे जाने की स्थिति में नहीं हैं पर वे शहर जाते हैं।

वे एक ट्रेक्टर में बैठकर शहर जाते हैं। ट्रेक्टर में बैठे लोगों को जब पता चलता है कि उन्हें तिरिछ ने काटा है तो पंडित जी उन्हें धतूरे के बीजों का काढ़ा पीने की सलाह देते हैं। रास्ते में एक तेली के खेत में धतूरे के पौधे देखकर वे लोग रुकते हैं और धतूरे की बीजों का काढ़ा पिताजी को पिलाते हैं जिसका विष उन पर तारी होने लगता है। शहर पहुँचते-पहुँचते वे लगभग बेहोशी की हालत में हो जाते हैं। वे ट्रेक्टर से उतर कर अदालत की ओर अकेले जाते हैं। लोग उनका दर्द नहीं समझ पाते। उन्हें पागल समझकर लोग मारते-पीटते हैं। कुछ लोग उन्हें पास्तिानी जासूस भी बताते है। उन्हें वक्त पर न कोई पानी पिलाता है न उनकी पीड़ा को पूछने-समझने का प्रयास करता है। लोगों के अमानवीय और असंवेदनशील व्यवहार के कारण वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

कहानी एक सवाल छोड़ती है कि पिता की मृत्यु इस असंवेदनशील जीवन की उपेक्षा का परिणाम है असंवेदनशील शहर पिता को खा जाता है। कहानी यद्यपि घटनाओं को असम्बद्ध तरीके से प्रस्तुत करती है, पर अन्त तक पाठक को सन्न कर देती है।